|| श्री आदिनाथाय नमः ||

करणानुयोग दीपक

द्वितीय भाग

- लेखक -

पं. (डॉ.) पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल

अतिशय क्षेत्र, पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर (म. प्र.)

सौजन्य से

श्रीमती विमला जैन

धर्मपत्नी श्री पारसमल जी पाटनी

द्वारा : मेसर्स राज इन्वेस्टमेंट्स

बी-६, द्वितीय तल, स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता

फोन : २४३३८९३, २४३२९३४, २४३३९९५

निवास : ३३७७५४२, २३४९०३२

- प्रकाशक -

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा

(प्रकाशन विभाग)

केन्द्रीय कार्यालय: श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स, मिल रोड, ऐशबाग

लखनऊ २२६००४ (उ० प्र०) फोन/फैक्स: (०५२२) २६७२८७, ६५४४१६

E mail: mahasabha@yahoo.com

आद्य निवेदन

करणानुयोग दीपक द्वितीय भाग को पाठकों के हाथों में अर्पित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। करणानुयोग के महान् ग्रन्थ धवल, जयधवल और महाधवल में प्रवेश पाने के लिए गोम्मटसार जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड का ज्ञान होना आवश्यक है। आचार्य नेमिचन्द्र जी ने धवलादि ग्रन्थों में से चयन कर जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड की रचना की थी। एक समय था जब विद्यालयों में इनका यथार्थ अध्ययन-अध्यापन होता था, पर अब परीक्षा का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए ही छात्र अध्ययन करते हैं ऐसा जान पड़ता है।

जीवकाण्ड का आधार लेकर **करणानुयोग दीपक** का **प्रथम भाग** लिखा था। आज **कर्मकाण्ड** का आधार लेकर **द्वितीय भाग** प्रकाशित कर रहा हूँ। इसमें ३०० प्रश्नों के द्वारा कर्मकाण्ड के प्रमुख विषयों को प्रकट करने का प्रयास किया है। गुरुणां गुरु **श्री गोपालदासजी बरैया** ने **जैन सिद्धान्त** प्रवेशिका को प्रश्नोत्तर की शैली में लिखकर कठिन विषय को सरल बनाने की जिस रीति का प्रारम्भ किया था वह रुचिकर सिद्ध हुई। उसी शैली पर अन्य विद्वानों ने भी लिखने का प्रयास किया है।

इन प्रकाशनों के आधार पर शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जावे तो अधिक लाभ हो सकता है। यह पुस्तक लिखकर मैंने **श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमतीजी** के पास भेज दी थी, इसे उन्होंने देखा तथा हमारे सहयोगी विद्वान् **पं० जवाहरलाल जी शास्त्री भीण्डर** ने विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ टिप्पण लगाये। इन सबके प्रति मेरा आदर भाव है।

जिनवाणी की सेवा का मुझे व्यसन है। इसके फलस्वरूप कुछ करता

रहता है, इसके प्रकाशन में श्रीमान् डॉ० चेतनप्रकाश जी पाटनी ने बड़ा श्रम किया है। श्रुतसेवा की लगन उन्हें अपने पिता निर्ग्रन्थ श्री १०८ समतासागरजी से प्राप्त है।

इसका प्रकाशन श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा से हो रहा है। एतदर्थ महासभा का प्रकाशन विभाग धन्यवाद का पात्र है। प्रश्नों के उत्तर में कहीं भूल हुई हो तो विज्ञ पाठक संशोधन कर सूचित करने की कृपा करें।

– विनीत

पन्नालाल साहित्याचार्य

भावना

अनादिकाल से संसार का प्रत्येक प्राणी अति दृढ़ कर्म शृंखलाओं के बन्धन से बद्ध है। चैतन्यमयी आत्मा के साथ कर्मों का यह सम्बन्ध क्यों, कैसे, किसके द्वारा, कितना और किस प्रकार का है ? यह सब जानने के तथा इनसे छूटने के उपायों का चिन्तन एवं पुरुषार्थ जीव ने आज तक नहीं किया। करुणावन्त आचार्य नेमिचन्द्र ने इन सब प्रश्नों का सरलता से बोध कराने हेतु षट्खण्डागम से कर्मकाण्ड ग्रन्थ का अवतरण किया। प्राकृत एवं संस्कृत भाषा की जटिलता दूर करने हेतु महामना पं. टोडरमल जी ने इस ग्रन्थ की टीका आदि का ढूंढारी भाषा में रूपान्तर किया। विषय को और स्पष्ट करने हेतु विदुषी आर्यिका १०५ श्री आदिमती माताजी ने इस पर अपनी लेखनी उठाई, जिसका सम्पादन करणानुयोग के मर्मज्ञ विद्वान स्व. पं. रतनचन्दजी मुख्तार सहारनपुर वालों ने किया।

जैन जगत् के मनीषी विद्वान पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने उपर्युक्त प्रश्नों को सरलतापूर्वक समझने हेतु ३०० प्रश्नोत्तरों द्वारा ग्रन्थ के हार्द को समाज के समक्ष रखकर सराहनीय कार्य किया है। आशा है आत्म हितैषी भव्य जीव इस अनुपम कृति का सदुपयोग कर कर्मों से छूटने का सत् प्रयास करेंगे, यही मेरी मंगल भावना है।

– आर्यिका विशुद्धमती

अनुक्रम

अधिकार	विषय	प्रश्न सं.	पृष्ठ सं.
१.	कर्म	१-१३६	१
२.	बन्ध	१४०-१८२	४८
३.	उदय	१८३-२१२	६६
४.	सत्त्व	२१३-२२५	८५
५.	व्युच्छित्ति	२२६-२३४	९४
	संक्रमण	२३५-२४१	९७
	दस करण	२४२-२४५	१००
	कर्म बंध के सामान्य प्रत्यय	२४६-२६६	१०२
	अन्य	२६७-३००	१०६

करणानुयोग दीपक

द्वितीय भाग

प्रथमाधिकार

मङ्गलाचरण

शुक्लध्यानप्रचण्डाग्नि-संदग्धाखिल-कर्मकम् ।
वर्धमानं जिनं नत्वा पश्चिमं तीर्थनायकम् ॥१॥
बालानां हितबुद्ध्याहं प्रेरितोऽत्र यथागमम्
करोमि वर्णनं किंचित् कर्मणां हतशर्मणाम् ॥२॥

१. **प्रश्न : कर्म किसे कहते हैं ?**

उत्तर: कर्म, कार्मण वर्गणारूप उन पुद्गल परमाणुओं को कहते हैं जो जीव के रागादिक विकारी भावों का निमित्त पाकर कर्मरूप परिणत हो जाते हैं।

२. प्रश्न : कार्मण वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर: कार्मण वर्गणा, पुद्गल द्रव्य की वह जाति है जिसमें कर्मरूप परिणमन करने की योग्यता है। ये कार्मण वर्गणा के परमाणु समस्त लोक में व्याप्त हैं और जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ संलग्न हैं।[1] जब जीव में राग द्वेषादि विकारी भाव होते हैं तब कार्मण वर्गणा के परमाणु कर्मरूप हो जाते हैं और उनमें स्थिति तथा फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही बन्ध कहलाता है।

३. प्रश्न : कर्मबंध कब से चला आ रहा है ?

उत्तर : जिस प्रकार खान में रहने वाले सुवर्ण- कणों के साथ किट्ट–कालिमा का सम्बन्ध अनादिकाल से है उसी प्रकार जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है।

---

१. राजवार्तिक में कहा भी है कि प्रत्येक आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर ज्ञानावरणादि कर्मों के अनंतानंत प्रदेश हैं। फिर एक–एक कर्म-प्रदेश पर औदारिक आदि शरीरों के अनन्तानन्त प्रदेश (परमाणु) हैं। फिर एक–एक शरीर सम्बन्धी प्रदेश पर अनन्तानंत विस्रसोपचय हैं, जो गीले गुड़ पर रेत आदि के संचय के समान स्थित है। (रा.वा.५/८/१६/४५१)

४. **प्रश्न : कर्म दिखाई नहीं देते फिर इनका अस्तित्व कैसे जाना जावे ?**

उत्तर : कर्म हैं तो पुद्‌गल द्रव्य तथा रूप, रस, गन्ध और स्पर्श सहित हैं परन्तु उनका सूक्ष्म परिणमन होने से वे दिखाई नहीं देते। फिर भी जीवों की ज्ञानी-अज्ञानी, दरिद्रता-सधनता, सबलता और निर्बलता आदि विषम दशाओं को देखकर कर्मों का अनुमान किया जाता है ?

५. **प्रश्न : जीव में रागादिक भाव क्यों होते हैं और कब से होते हैं ?**

उत्तर : जीव और पुद्‌गल द्रव्य में एक वैभाविक शक्ति होती है; उस शक्ति के कारण जीव में रागादिरूप परिणमन करने की योग्यता है और पुद्‌गल द्रव्य में कर्मरूप परिणमन करने की योग्यता है। इस योग्यता के कारण कर्मोदय का निमित्त पाकर जीव में रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं और पुद्‌गल द्रव्य में कर्मरूप परिणमन होता है। जीव का यह रागादिरूप परिणमन अनादिकाल से चला आ रहा है और पुद्‌गल द्रव्य का कर्मरूप परिणमन भी अनादिकाल से चला आ रहा है। जीव के रागादिक भावों का उपादान

कारण जीव स्वयं है और पुद्गल के कर्मरूप परिणमन का उपादान कारण पुद्गल द्रव्य स्वयं है। जीव के रागादिक भावों का निमित्त कारण चारित्रमोह कर्म की उदयावस्था है और कर्म का निमित्त कारण जीव का रागादिक भाव है। जीव और कर्म में परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव होने पर भी एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता अर्थात् जीव सदा जीव रहता है और पुद्गल सदा पुद्गल रहता है, परन्तु इन दोनों का संश्लेषात्मक संयोग सम्बन्ध होने के कारण संसारी दशा में ये अलग-अलग नहीं होते हैं।

६. **प्रश्न : जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि से होने पर भी क्या कभी छूटता है या नहीं?**

उत्तर : जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि-अनन्त, अनादि सान्त और सादि सान्त के भेद से तीन प्रकार का होता है। अभव्य तथा दूरानुदूर-भव्य का कर्म-सम्बन्ध सामान्य की अपेक्षा अनादि अनंत है अर्थात् अनादि से है और अनंत काल तक रहता है। भव्य जीव का कर्म-सम्बन्ध सामान्य की अपेक्षा अनादि होने पर भी तपश्चरण से छूट जाता है जिससे वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है इसलिये अनादि

सान्त है और विशेष की अपेक्षा भव्य अभव्य दोनों के प्रतिसमय कर्मबन्ध होता है और अपनी स्थिति के अनुसार कर्मों की निर्जरा होती रहती है इसलिये सादि-सान्त है।

७. **प्रश्न : उपादान कारण किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जो कार्यरूप परिणत हो उसे उपादान कारण कहते हैं। जैसे रोटी रूप परिणमन करने से आटा रोटी का उपादान कारण है।

८. **प्रश्न : निमित्त कारण किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जो उपादान को कार्य रूप परिणमन करने में सहायक हो उसे निमित्त कारण कहते हैं। जैसे आटा के रोटी रूप परिणमन करने में अग्नि, पानी, चकला, बेलन तथा बनाने वाला व्यक्ति।

९. **प्रश्न : निमित्त कारण के कितने भेद हैं ?**

उत्तर : निमित्त कारण के दो भेद हैं -

१. अन्तरङ्ग निमित्त और २. बहिरंग निमित्त।

१०. **प्रश्न : अंतरंग निमित्त किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके होने पर उपादान में कार्यरूप परिणमन नियम से होता है उसे अन्तरङ्ग निमित्त कहते हैं जैसे भव्य जीव के

मिथ्यात्व, सम्यङ् मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति और अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यग्दर्शन नियम से प्रकट होता है।

११. प्रश्न : बहिरंग निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो अन्तरंग निमित्त का सहकारी हो उसे बहिरंग निमित्त कहते हैं जैसे सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में सद्गुरुओं का उपदेश, जिनेन्द्र बिम्ब का दर्शन आदि। बहिरंग निमित्त के मिलने पर कार्य की सिद्धि अनिवार्य रूप से हो, यह नियम नहीं है परन्तु अन्तरङ्ग निमित्त के मिलने पर कार्य की सिद्धि नियम से होती है। अन्तरंग निमित्त के मिलने पर बहिरंग निमित्त कुछ भी हो सकता है।

१२. प्रश्न : अन्तरंग निमित्त मिलाने के लिये बहिरंग निमित्त का मिलाना आवश्यक है या नहीं?

उत्तर : अन्तरंग निमित्त मिलाने के लिये बहिरंग निमित्त के मिलाने का पुरुषार्थ करना आवश्यक है। जैसे पुत्र-प्राप्ति के लिये विवाहादि करना आवश्यक है पर विवाहादि करने पर पुत्र हो ही जावे, यह नियम नहीं है। इतना अवश्य है कि अन्तरंग निमित्त की अनुकूलता मिलने पर पुत्र की उत्पत्ति होने में विवाहादि बाह्य निमित्त का मिलना आवश्यक है।

१३. प्रश्न : समर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर : उपादान और निमित्त की अनुकूलता को समर्थ कारण कहते हैं। कार्य की सिद्धि न केवल उपादान कारण से होती है और न केवल निमित्त कारण से। दोनों की अनुकूलता रूप समर्थ कारण से होती है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपादान कारण नहीं हो सकता, पर निमित्त कारण अवश्य होता है।

१४. प्रश्न : भव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस जीव में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त करने की योग्यता हो उसे भव्य कहते हैं। भव्य जीव ही मोक्ष का पात्र होता है परन्तु मोक्ष प्राप्त हो चुकने के बाद उसमें भव्यत्व भाव नहीं रहता।

१५. प्रश्न : क्या सब भव्य जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर : नहीं, दूरानुदूर भव्य को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। योग्यता के कारण ही उसको भव्य कहते हैं परन्तु उसे अपनी योग्यता को विकसित करने के लिये कभी निमित्त नहीं मिलते।

१६. प्रश्न : अभव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करने की योग्यता न हो उसे अभव्य कहते हैं। जिस प्रकार बिना सीझने वाली मूंग, आग और पानी का निमित्त मिलने पर भी नहीं सीझती है उसी प्रकार अभव्य जीव, निमित्त मिलने पर भी रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर सकते।

१७. प्रश्न : कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : मूल में द्रव्यकर्म और भावकर्म के भेद से कर्म दो प्रकार के होते हैं। कर्मरूप परिणत पुद्गल द्रव्य का जो पिण्ड है उसे द्रव्यकर्म कहते हैं तथा उसकी शक्ति को भावकर्म कहते हैं। द्रव्यकर्म की उदयावस्था का निमित्त पाकर जीव में जो रागद्वेष रूप परिणति होती है उसे भी भावकर्म कहते हैं। द्रव्यकर्म के घाति और अघाति के भेद से दो भेद होते हैं।

१८. प्रश्न : घातिकर्म किसे कहते हैं ? और उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जो जीव के ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन अनुजीवी गुणों का घात करते हैं उन्हें घाति कर्म कहते हैं। इनके चार भेद हैं १. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण ३. मोहनीय

और ४. अन्तराय। ये कर्म, जीव के क्रम से ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य गुण को घातते हैं।

१९. प्रश्न : अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिनके रहते हुए जीव का जीवत्व सुरक्षित रहे उन्हें अनुजीवी गुण कहते हैं जैसे ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य। जिस प्रकार उष्णता के रहने पर अग्नि का अग्नित्व सुरक्षित रहता है उसी प्रकार ज्ञान दर्शनादि गुणों के रहते हुए जीव का जीवत्व सुरक्षित रहता है ?

२०. प्रश्न : अघाति कर्म किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : जो जीव के अनुजीवी गुणों का घात न करें उन्हें अघाति कर्म कहते हैं। इनके चार भेद हैं- १. वेदनीय २. आयु ३. नाम और ४. गोत्र। ये कर्म क्रम से जीव के अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व गुणों का घात करते हैं। ये गुण जीव के प्रतिजीवी गुण कहलाते हैं।

२१. प्रश्न : ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव के ज्ञान गुण को प्रकट न होने दे उसे ज्ञानावरण

कर्म कहते हैं।

२२. प्रश्न : ज्ञानावरण कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पाँच भेद हैं- १. मतिज्ञानावरण २. श्रुतज्ञानावरण ३. अवधिज्ञानावरण ४. मनःपर्यय ज्ञानावरण और ५. केवल ज्ञानावरण। इन सबका अर्थ स्पष्ट है।

२३. प्रश्न : दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव का दर्शन (सामान्य प्रतिभास) गुण प्रकट न हो सके उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

२४. प्रश्न : दर्शनावरण कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : नौ हैं- १. चक्षुर्दर्शनावरण २. अचक्षुर्दर्शनावरण ३. अवधिदर्शनावरण ४. केवलदर्शनावरण ५. निद्रा ६. निद्रा-निद्रा ७. प्रचला ८. प्रचला-प्रचला और ९. स्त्यानगृद्धि।

२५. प्रश्न : चक्षुर्दर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो चक्षु इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान के पूर्ववर्ती सामान्य प्रतिभास को प्रकट न होने दे उसे चक्षुर्दर्शनावरण कहते

हैं।

२६. प्रश्न : अचक्षुर्दर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो चक्षु इंद्रिय के सिवाय शेष इंद्रियों तथा मन से होने वाले ज्ञान के पूर्ववर्ती सामान्य प्रतिभास को प्रकट न होने दे उसे अचक्षुर्दर्शनावरण कहते हैं।

२७. प्रश्न : अवधिदर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो अवधिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास को प्रकट न होने दे उसे अवधि दर्शनावरण कहते हैं।

२८. प्रश्न : केवल दर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य प्रतिभास को प्रकट न होने दे उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

२९. प्रश्न : ज्ञान और दर्शन किसे कहते हैं तथा उनके कितने भेद हैं ?

उत्तर : 'यह घट है, यह पट है' इस प्रकार की विशेषता को लिये हुए जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- १. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मनःपर्ययज्ञान और ५. केवलज्ञान। जो पदार्थ को

विकल्प रहित-सामान्य रूप से जानता है उसे दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं- १. चक्षुर्दर्शन २. अचक्षुर्दर्शन ३. अवधिदर्शन और ४. केवल दर्शन। छद्मस्थ- बारहवें गुणस्थान तक के जीवों का ज्ञान दर्शन पूर्वक होता है अर्थात् पहले दर्शन होता है और उसके बाद ज्ञान। परन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन साथ साथ होते हैं। श्रुतज्ञान, मतिज्ञान पूर्वक होता है। और मनःपर्यय ज्ञान, ईहा मतिज्ञान पूर्वक होता है इसलिये इनके पहले श्रुतदर्शन और मनःपर्यय दर्शन नहीं होता। वीरसेन स्वामी ने सामान्य का अर्थ आत्मा कहा है अतः उनके कहे अनुसार सामान्यावलोकन का अर्थ आत्मावलोकन होता है।

३०. प्रश्न : निद्रादर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से साधारण नींद आती है उसे निद्रा दर्शनावरण कहते हैं।

३१. प्रश्न : निद्रा-निद्रादर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से गहरी नींद आती है उसे निद्रा-निद्रादर्शनावरण कहते हैं।

३२. प्रश्न : प्रचलादर्शनावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव बैठे बैठे सो जाता है तथा कुछ जागता रहता है उसे प्रचलादर्शनावरण कर्म कहते हैं।

३३. **प्रश्न : प्रचला-प्रचलादर्शनावरण किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से सोते समय मुँह से लार बहने लगे तथा हाथ पैर चलने लगें, ऐसी गहरी प्रचला के कारण को प्रचला-प्रचलादर्शनावरण कहते हैं।

३४. **प्रश्न : स्त्यानगृद्धि किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से जीव सोते समय भयंकर कार्य कर ले और जागने पर स्मरण नहीं रहे उसे स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

इन पाँच निद्राओं से आत्मा के दर्शन गुण का घात होता है इसलिये इन्हें दर्शनावरण कर्म के भेदों में सम्मिलित किया है।

३५. **प्रश्न : वेदनीय कर्म किसे कहते हैं ? और उसके कितने भेद हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से आत्मा के अव्याबाध गुण का घात होता है अथवा जिसके उदय से जीव सुख दुःख का वेदन करता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं-

साता वेदनीय और २. असाता वेदनीय।

३६. प्रश्न : साता वेदनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से यह जीव प्राप्त सामग्री में सुख का वेदन करता है उसे साता वेदनीय कहते हैं।

३७. प्रश्न : असाता वेदनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव प्राप्त सामग्री में दुःख का वेदन अनुभव करता है उसे असाता वेदनीय कहते हैं।

३८. प्रश्न : मोह-मोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो आत्मा के सम्यक्त्व या सुख गुण का घात करे अथवा जिसके उदय से जीव स्वरूप को भूल कर पर पदार्थों में अहंकार और ममकार करने लगता है उसे मोह या मोहनीय कर्म कहते हैं ?

३९. प्रश्न : मोह कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : मूल में दो भेद हैं- १. दर्शन मोह और २. चारित्र मोह। दर्शन मोह के तीन भेद हैं- १. मिथ्यात्व २. सम्यङ्.मिथ्यात्व और ३. सम्यक्त्व प्रकृति। चारित्र. मोह के दो भेद हैं- १. कषाय वेदनीय और २. नौकषाय वेदनीय। कषाय वेदनीय के सोलह भेद हैं-

१. अनन्तानुबन्धी क्रोध- मान- माया- लोभ २. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध- मान- माया- लोभ ३. प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ और ४. संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ (४X४=१६)। नौकषाय के नौ भेद हैं- १. हास्य २. रति ३. अरति ४. शोक ५. भय ६. जुगुप्सा ७. स्त्री वेद ८. पुरुष वेद और ९. नपुंसक वेद।

४०. प्रश्न : मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव की अतत्त्व श्रद्धान रूप परिणति होती है उसे मिथ्यात्व कहते हैं।

४१. प्रश्न : सम्यङ् मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के मिश्रित परिणाम होते हैं उसे सम्यङ् मिथ्यात्व कहते हैं।

४२. प्रश्न : सम्यक्त्व प्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यग्दर्शन में चल, मलिन और अगाढ़ दोष लगते हैं उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

४३. प्रश्न : चल दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर : सब तीर्थंकरों की समान शक्ति होने पर भी शान्तिनाथ शान्ति के करने वाले हैं तथा पार्श्वनाथ रक्षा करने वाले हैं ऐसा भाव होना चल दोष कहलाता है।

४४. प्रश्न : मलिन दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर : सम्यग्दर्शन में शङ्का कांक्षा आदि अथवा तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोष लगने को मलिन दोष कहते हैं।

४५. प्रश्न : अगाढ़ दोष किसे कहते हैं ?

उत्तर : अपने द्वारा निर्मापित या प्रतिष्ठापित प्रतिमा आदि में 'यह मन्दिर मेरा है, यह प्रतिमा मेरी है' इस प्रकार का भाव होना अगाढ़ दोष कहलाता है।[1]

४६. प्रश्न : अनन्तानुबन्धी किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो कषाय सम्यक्त्व को घातती है अथवा अनन्तमिथ्यात्व के साथ जिसका अनुबन्ध-सम्बन्ध हो उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं। इसके क्रोध-मान-माया और लोभ के भेद से चार भेद हैं।

---

१. स्मरण रहे कि यह एक उदाहरण मात्र है।

४७. प्रश्न : अप्रत्याख्यानावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो अप्रत्याख्यान-एक देश चारित्र को प्रकट न होने दे उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। इसके क्रोध आदि चार भेद हैं।

४८. प्रश्न : प्रत्याख्यानावरण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो प्रत्याख्यान-सकल चारित्र का घात करे उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। इसके क्रोध आदि चार भेद हैं।

४९. प्रश्न : संज्वलन किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो यथाख्यात चारित्र को प्रकट न होने दे तथा संयम के साथ प्रकाशमान रहे उसे संज्वलन कहते हैं। इसके भी क्रोध आदि चार भेद हैं।

उपर्युक्त सोलह कषाय आत्मा को निरन्तर कषती रहती हैं- दुखी करती रहती हैं इसलिये इन्हें कषाय वेदनीय कहते हैं।

५०. प्रश्न : हास्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से हँसी आवे उसे हास्य कहते हैं।

५१. प्रश्न : रति किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से स्त्री पुत्र, आदि में प्रीति रूप परिणाम

होता है उसे रति कहते हैं।

५२. **प्रश्न : अरति किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से शत्रु आदि अनिष्ट पदार्थों में अप्रीतिरूप परिणाम होते हैं उसे अरति कहते हैं।

५३. **प्रश्न : शोक किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग में खेद रूप परिणाम होते हैं उसे शोक कहते हैं।

५४. **प्रश्न : भय किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से भयरूप परिणाम होते हैं उसे भय कहते हैं।

५५. **प्रश्न : जुगुप्सा किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से ग्लानिरूप परिणाम होता है उसे जुगुप्सा कहते हैं।

५६. **प्रश्न : स्त्री वेद किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय में पुरुष से रमने के भाव होते हैं उसे स्त्री वेद कहते हैं।

५७. **प्रश्न : पुरुष वेद किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय में स्त्री से रमने के भाव होते हैं उसे पुरुष वेद कहते हैं।

५८. **प्रश्न : नपुंसक वेद किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से स्त्री तथा पुरुष दोनों से रमने के भाव हों उसे नपुंसक वेद कहते हैं।[1]

---

१. *सर्वार्थसिद्धि (२/५२) में कहा है कि 'नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् अर्थात् नपुंसकवेद के उदय से जो दोनों शक्तियों (स्त्रीरूप व पुरुषरूप) से रहित है वह नपुंसक है।*

जीवकांड में द्रव्य नपुंसक के लिए कहा है- नपुंसकवेद के उदय से तथा निर्माण नामकर्म के उदय से युक्त अंगोपांग नामकर्म के उदय से दोनों लिंगों से भिन्न शरीर वाला द्रव्य नपुंसक होता है। (गो०जी०गा० २७१ टीका, पृ० ४६२ भारतीय ज्ञानपीठ) वहीं भाव नपुंसक के लिये लिखा है कि दाढ़ी, मूँछ और स्तन आदि स्त्री और पुरुष के द्रव्य लिंगों (चिह्नों) से रहित; ईंट पकाने के पजावे की आग के समान तीव्र काम-वेदना से पीड़ित तथा कलुषित चित्त उस जीव को परमागम में नपुंसक कहा है। (उस जीव के स्त्री और पुरुष की अभिलाषा रूप तीव्र काम वेदना लक्षण वाला भाव नपुंसक वेद होता है।) (गो० जी० गा० २७५ एवं धवल १/३४४ एवं प्रा. पं. सं. १/१०७)

उपर्युक्त हास्य आदि नौ भावों का संस्कार क्रोध आदि कषायों के समान दीर्घकाल तक नहीं रहता, इसलिये इन्हें अकषाय वेदनीय अथवा नौ कषायकिंचित्कषाय कहते हैं।

५९. प्रश्न : आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो आत्मा के अवगाहन गुण को प्रकट न होने दे उसे आयु कर्म कहते हैं अथवा जिस कर्म के उदय से यह जीव निश्चित समय तक नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव के शरीर में रुका रहे उसे आयु कर्म कहते हैं।

६०. प्रश्न : आयुकर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार हैं- १. नरकायु २. तिर्यगायु ३. मनुष्यायु और ४. देवायु। इनका अर्थ नाम से ही स्पष्ट है।

६१. प्रश्न : नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण को प्रकट न होने दे अथवा जिसके उदय से गति-जाति तथा शरीर आदि की रचना होती है उसे नाम कर्म कहते हैं।

६२. प्रश्न : नाम कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर : पिण्ड प्रकृतियों की अपेक्षा बयालीस और सामान्य अपेक्षा से तिरानबे भेद होते हैं।

६३. प्रश्न : पिण्ड प्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिनके एक से अधिक भेद होते हैं उन्हें पिण्ड प्रकृति कहते हैं। जैसे गति, जाति आदि।

६४. प्रश्न : गति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से जीव की नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवरूप अवस्था हो उसे गति नाम कर्म कहते हैं। इसके नरक गति आदि चार भेद हैं।

६५. प्रश्न : जाति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से इस जीव का एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में जन्म हो उसे जाति नाम कर्म कहते हैं। इसके एकेन्द्रियादि पाँच भेद हैं।

६६. प्रश्न : शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण, इन पाँच शरीरों की रचना होती है उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। इसके औदारिक शरीर नामकर्म आदि पाँच भेद हैं।

६७. प्रश्न : अंगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से दो हाथ, दो पैर, नितम्ब, पीठ, छाती

और सिर इन आठ अंगों की तथा अंगुली, कान, नाक आदि उपांगों की रचना हो उसे अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं- १. औदारिक शरीरांगोपांग २. वैक्रियिक शरीरांगोपांग और ३. आहारक शरीरांगोपांग। इसका उदय एकेंद्रिय जीवों को नहीं होता।

६८. प्रश्न : निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से अंगोपांगों की रचना यथास्थान तथा यथाप्रमाण हो उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं।

६९. प्रश्न : बन्धन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से औदारिकादि शरीरों के परमाणु परस्पर बन्धनरूप अवस्था को प्राप्त हों उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं। इसके औदारिक शरीर बन्धन आदि पाँच भेद हैं।

७०. प्रश्न : संघात नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु परस्पर छिद्र रहित होकर मिलें उसे संघात नामकर्म कहते हैं। इसके औदारिक शरीर संघात आदि पाँच भेद होते हैं।

७१. प्रश्न : संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर की आकृति बनती है उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं। इसके छह भेद हैं- १. समचतुरस्रसंस्थान २. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान ३. स्वातिसंस्थान ४. वामनसंस्थान ५. कुब्जक संस्थान और ६. हुण्डक संस्थान।

७२. प्रश्न : समचतुरस्रसंस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर सुन्दर और सुडौल होता है उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं।

७३. प्रश्न : न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर वटवृक्ष के समान होता है अर्थात् नाभि से नीचे का भाग पतला और ऊपर का भाग मोटा होता है उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं।

७४. प्रश्न : स्वाति संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से इस जीव का शरीर स्वाति-साँप की वामी के समान होता है अर्थात् नाभि से नीचे का भाग मोटा और ऊपर का भाग पतला होता है उसे स्वाति संस्थान कहते हैं।

७५. प्रश्न : वामन संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर बौना होता है उसे वामन संस्थान कहते हैं।

७६. प्रश्न : कुब्जक संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव का शरीर कुबड़ा होता है उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं।

७७. प्रश्न : हुण्डक संस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव का शरीर किसी खास आकृति का न होकर विरूप होता है उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

७८. प्रश्न : संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर के अन्दर संहनन हड्डी की रचना होती है उसे संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद हैं- १. वज्रर्षभनाराच संहनन २. वज्र नाराच संहनन ३. नाराच संहनन ४. अर्धनाराच संहनन ५. कीलक संहनन और ६. असंप्राप्त सृपाटिका संहनन।

७९. प्रश्न : वज्रर्षभ नाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से वज्र के हाड़, वज्र के वेष्टन और वज्र की कीलें हों उसे वज्रर्षभनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

८०. प्रश्न : वज्रनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से वज्र के हाड़ तथा वज्र की कीलें हों परन्तु वेष्टन वज्र के न हों उसे वज्र नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

८१. प्रश्न : नाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर के हाड़ साधारण वेष्टन और कीलों से सहित होते हैं उसे नाराचसंहनन नामकर्म कहते हैं।

८२. प्रश्न : अर्धनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से हाड़ों की सन्धियाँ अर्धकीलित हों उसे अर्धनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

८३. प्रश्न : कीलक संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से हाड़ों की सन्धियाँ साधारण कीलों से युक्त हों उसे कीलक संहनन नामकर्म कहते हैं।

८४. प्रश्न : असंप्राप्त सृपाटिका संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से हाड़ परस्पर नसों से बंधे हों, कीलित न हों, उसे असंप्राप्त सृपाटिका संहनन नामकर्म कहते हैं।

८५. प्रश्न : स्पर्श नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर में स्निग्ध-रूक्ष आदि स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं- १. स्निग्ध २. रूक्ष ३. कोमल ४. कठोर ५. हल्का ६. भारी ७. शीत और ८. उष्ण।

८६. प्रश्न : रस नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर में खट्टा मीठा आदि रस हो उसे रस नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- १. खट्टा २. मीठा ३. कडुआ ४. कषायला और ५. चरपरा।

८७. प्रश्न : गन्ध नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न हो उसे गन्ध नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं- १. सुगन्ध और २. दुर्गन्ध।

८८. प्रश्न : वर्ण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर में काला-पीला आदि वर्ण उत्पन्न हों उसे वर्ण नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- १. काला २. पीला ३. नीला ४. लाल और ५. सफेद।

८९. प्रश्न : आनुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से विग्रहगति में आत्म प्रदेशों का आकार पिछले (छोड़े हुए) शरीर के आकार का हो। इसके चार भेद हैं १. नरक गत्यानुपूर्व्य २. तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य ३. मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और ४. देवगत्यानुपूर्व्य। जैसे कोई मनुष्य मरकर देव गति में जा रहा है उसके देवगत्यानुपूर्व्य का उदय होगा और छोड़े हुए मनुष्य के शरीर का आकार विग्रह गति में बना रहेगा। आनुपूर्व्य नामकर्म का उदय विग्रहगति में ही होता है।

६०. प्रश्न : विग्रहगति किसे कहते हैं ?

उत्तर : पूर्व शरीर छूटने पर नवीन शरीर ग्रहण करने के लिये जीव का जो गमन होता है उसे विग्रह गति कहते हैं। इसके चार भेद हैं- १. ऋजुगति (इषुगति) २. पाणिमुक्तागति ३. लांगलिकागति और ४. गोमूत्रिकागति। इनमें से ऋजुगति में आनुपूर्व्य का उदय नहीं होता क्योंकि एक समय के भीतर ही नवीन शरीर का आकार प्राप्त हो जाता है।

६१. प्रश्न : अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो लोहे के

गोला के समान भारी और अर्क के तूल के समान हल्का न हो उसे अगुरुलघु नामकर्म कहते हैं।

६२. **प्रश्न : उपघात नामकर्म किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से अपना ही घात करने वाले अंगोपांग हों उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं।

६३. **प्रश्न : परघात नामकर्म किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से दूसरों का घात करने वाले अंगोपांग हों उसे परघात नामकर्म कहते हैं।

६४. **प्रश्न : आतप नामकर्म किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से ऐसा भास्वर शरीर प्राप्त हो जिसका मूल ठण्डा और प्रभा उष्ण हो। इसका उदय सूर्य के विमान में रहने वाले बादर पृथिवीकायिक जीवों के होता है।

६५. **प्रश्न : उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं ?**

उत्तर : जिसके उदय से ऐसा भास्वर शरीर प्राप्त हो जिसका मूल और प्रभा-दोनों शीतल हों। इसका उदय चन्द्रमा के विमान में रहने वाले बादर पृथिवीकायिक तथा जुगनू आदि के होता है।

९६. प्रश्न : उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से श्वासोच्छ्वास चलता है उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

९७. प्रश्न : विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं- १. प्रशस्त विहायोगति और २. अप्रशस्त विहायोगति। इसका उदय सबके होता है, न केवल पक्षियों के।

९८. प्रश्न : प्रत्येक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जिसका एक जीव ही स्वामी हो।

९९. प्रश्न : साधारण शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जिसके अनेक जीव स्वामी हों। इसका उदय वनस्पतिकायिक जीव के ही होता है।

१००. प्रश्न : त्रस नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से द्वीन्द्रियादि जाति में जन्म हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं।

१०१. प्रश्न : स्थावर नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर : जिसके उदय से एकेन्द्रिय जीवों में जन्म हो उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- १. पृथिवीकायिक २. जलकायिक ३. अग्निकायिक ४. वायुकायिक और ५. वनस्पतिकायिक।

१०२. प्रश्न : सुभग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से दूसरों को प्रिय लगने वाला शरीर प्राप्त हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं।

१०३. प्रश्न : दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म के उदय से अपना रूपादि गुणों से युक्त भी शरीर दूसरों को अच्छा न लगे उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

१०४. प्रश्न : सुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव को अच्छा स्वर प्राप्त होता है उसे सुस्वर कहते हैं।

१०५. प्रश्न : दुःस्वर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से अच्छा स्वर न हो उसे दुःस्वर नामकर्म कहते हैं।

१०६. प्रश्न : शुभ नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हों उसे शुभ नामकर्म कहते हैं। अथवा जिस कर्म के उदय से चक्रवर्तित्व, बलदेवत्व, वासुदेवत्व आदि ऋद्धियों के सूचक शंख, कमल आदि चिह्न अंग प्रत्यंगों में उत्पन्न होवें वह शुभ नामकर्म है।

१०७. प्रश्न : अशुभ नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं। अथवा जिस नामकर्म के उदय से शरीर में अशुभ लक्षण उत्पन्न होते हैं वह अशुभ नामकर्म है।

१०८. प्रश्न : सूक्ष्म नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी से रुके और न किसी को रोक सके। उसे सूक्ष्म नामकर्म कहते हैं। यह शरीर एकेन्द्रिय जीवों के ही होता है। उनमें भी प्रत्येक वनस्पति के नहीं होता।

१०९. प्रश्न : बादर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से ऐसा शरीर हो जो किसी से रुके तथा किसी को रोके उसे बादर नामकर्म कहते हैं। इसका उदय सब संसारी जीवों के होता है।

११०. प्रश्न : पर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियों की यथायोग्य (पर्याययोग्य) पूर्णता हो उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।

१११. प्रश्न : अपर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो उसे अपर्याप्ति नामकर्म कहते हैं। इसका उदय सम्मूर्च्छन जन्म वाले मनुष्य और तिर्यंचों के ही होता है।

११२. प्रश्न : स्थिर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर के धातु-उपधातु अपने अपने

स्थानों पर यानी अपने स्वरूप से स्थिर रहें उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं।

११३. प्रश्न : अस्थिर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर के धातु उपधातु स्थिर न रहें अर्थात् चलायमान होते रहें उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं।[1]

११४. प्रश्न : आदेय नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से शरीर, विशिष्ट कांति से सहित होता है उसे आदेय नामकर्म कहते हैं।

११५. प्रश्न : अनादेय नामकर्म किसे कहते हैं ?

---

१. अर्थात् इस अस्थिर नामकर्म के उदय से रसादिकों का आगे की धातुओं रूप से परिणमन होता है। (धवल १२/३६५) यानी रस से रक्त रूप परिणमन, रक्त से मांस रूप, मांस से मेदे रूप, मेदे से हड्डी रूप, हड्डी से मज्जे रूप तथा मज्जे से वीर्यरूप परिणमन (बदलन) होता है। इस उक्त प्रकार से बदलन जिस कर्म के उदय से होता है, वह अस्थिर नामकर्म कहा गया है। यदि अस्थिर नामकर्म न हो तो रस, रस रूप ही रह जायगा, आगे की धातुओं रूप परिणत न होगा, इत्यादि। (धवल ६/६३-६४) राजवार्तिक (८/११, वा० ३४) में लिखा है कि जिसके उदय से दुष्कर उपवासादि करने पर भी अंग-उपांग (शरीर) स्थिर बने रहते हैं- कृश नहीं होते वह स्थिर नामकर्म है तथा जिसके कारण एक उपवास से या साधारण शीत-उष्ण आदि लगने से ही शरीर कृश हो जाए वह अस्थिर नामकर्म है। (रा० वा० ८/११/३४-३५ पृ० ५७८ व ७५५)।

उत्तर : जिसके उदय से शरीर विशिष्ट कान्ति से रहित हो उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं।

११६. प्रश्न : यशस्कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव की संसार में कीर्ति विस्तृत हो उसे यशस्कीर्ति नामकर्म कहते हैं।

११७. प्रश्न : अयशस्कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव का संसार में अपयश विस्तृत हो उसे अयशस्कीर्ति नामकर्म कहते हैं।

११८. प्रश्न : तीर्थंकर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त होता है उसे तीर्थंकर नामकर्म कहते हैं। यह प्रकृति सातिशय पुण्य-प्रकृति है। इसके उदय से समवशरण में अष्ट प्रातिहार्यों की प्राप्ति होती है।

११९. प्रश्न : गोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसके उदय से जीव के अगुरुलघु गुण का घात हो अथवा यह जीव उच्च-नीच कुल में उत्पन्न हो उसे गोत्रकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं- १. उच्च गोत्र और २. नीच गोत्र। उच्च गोत्र के उदय से लोक प्रसिद्ध उच्च

कुल में जन्म होता है और नीच गोत्र के उदय से लोक निन्द्य नीच कुल में जन्म होता है। नारकी और तिर्यंचों के नीच गोत्र का उदय रहता है[1]। देव और भोगभूमिज मनुष्यों के उच्च गोत्र का उदय रहता है परन्तु कर्मभूमिज मनुष्यों का जन्म दोनों प्रकार के गोत्रों में होता है।

१२०. प्रश्न : अन्तरायकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो जीव के वीर्यत्व गुण का घात करे अथवा जिसके उदय से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न उत्पन्न हो उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं १. दानान्तराय, २. लाभांतराय ३. भोगान्तराय ४. उपभोगान्तराय और ५. वीर्यान्तराय। सबका अर्थ नाम से स्पष्ट है।

१२१. प्रश्न : एक समय में कितने कर्म प्रदेशों का बन्ध होता है?

उत्तर : एक समय में सिद्धों से अनन्तवें भाग और अभव्यराशि से अनन्त गुणित प्रदेश वाले समय प्रबद्ध का बन्ध होता है।

---

१. परन्तु परमपूज्य भगवद् वीरसेन स्वामी ने कहा है कि- तिरिक्खेसु संजमासंजमं पडिवालयंतेसु उच्चागोदत्तुवलंभादो (धवल १५/१५२, १७३-७४ आदि) यानी संयमासंयम को पालने वाले तिर्यंचों में उच्च गोत्र पाया जाता है। इस प्रकार इस विषय में दो मत हैं।

१२२. प्रश्न : घातिया कर्मों के कितने भेद हैं ?

उत्तर : दो भेद हैं १. देशघाति और २. सर्वघाति।

१२३. प्रश्न : देशघाति किसे कहते हैं ? और वे कौन कौन हैं ?

उत्तर : जो जीव के गुणों का एक देशघात करें अर्थात् जिनका उदय रहते हुए भी गुण कुछ अंशों में प्रकट रहें उन्हें देशघाति कर्म कहते हैं। १. मति ज्ञानावरण २. श्रुत ज्ञानावरण ३. अवधि ज्ञानावरण, ४. मन:पर्यय ज्ञानावरण, ५. चक्षुर्दर्शनावरण, ६. अचक्षुर्दर्शनावरण, ७. अवधि दर्शनावरण, ८. सम्यक्त्व प्रकृति, ९. संज्वलन क्रोध १०. संज्वलन मान ११. संज्वलन माया १२. संज्वलन लोभ, १३. हास्य, १४. रति १५. अरति १६. शोक १७. भय १८. जुगुप्सा १९. स्त्री वेद, २०. पुरुष वेद, २१. नपुंसक वेद, २२. दानान्तराय २३. लाभान्तराय २४. भोगान्तराय, २५. उपभोगान्तराय और २६. वीर्यान्तराय ये छब्बीस प्रकृतियाँ देशघाति हैं।

१२४. प्रश्न : सर्वघाति किसे कहते हैं ? और वे कौन कौन हैं?

उत्तर : जो आत्म गुणों को बिल्कुल ही प्रकट न होने दे उसे सर्वघाति कहते हैं। वे इक्कीस हैं- १. केवलज्ञानावरण

२. केवलदर्शनावरण, पाँच निद्राएँ, मिथ्यात्व सम्यङ् मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषाय। इनमें सम्यङ्मिथ्यात्व का बन्ध नहीं होता; मात्र उदय और सत्त्व होता है। इसका कार्य अन्य सर्व घातियों की अपेक्षा विभिन्न प्रकार का होता है।

१२५. प्रश्न : विपाक की अपेक्षा कर्म प्रकृतियों के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार हैं- १. जीव विपाकी, २. पुद्गल विपाकी, ३. क्षेत्र विपाकी और ४. भव विपाकी।

१२६. प्रश्न : जीव विपाकी किसे कहते हैं ? और वे कौन कौन हैं ?

उत्तर : प्रमुख रूप से जिनका फल आत्मा पर होता है उन्हें जीव विपाकी कहते हैं। वे निम्नलिखित ७८ हैं जैसे घातिया कर्मों की ४७, वेदनीय की २, गोत्र की २ और नामकर्म की २७।

१२७. प्रश्न : नामकर्म की २७ जीव विपाकी प्रकृतियाँ कौन कौन हैं?

उत्तर : १. तीर्थंकर २. उच्छ्वास ३. बादर ४. सूक्ष्म ५. पर्याप्त

६. अपर्याप्त ७. सुस्वर ८. दुःस्वर ९. आदेय १०. अनादेय ११. यशस्कीर्ति १२. अयशस्कीर्ति १३. त्रस १४. स्थावर १५. प्रशस्त विहायोगति १६. अप्रशस्त विहायोगति १७. सुभग १८. दुर्भग १९. नरक गति २०. तिर्यग्गति २१. मनुष्यगति २२. देवगति २३. एकेन्द्रिय जाति २४. द्वीन्द्रिय जाति २५. त्रीन्द्रिय जाति २६. चतुरिन्द्रिय जाति और २७. पंचेन्द्रिय जाति।

१२८. प्रश्न : पुद्‌गल विपाकी किसे कहते हैं ? और ये कौन कौन हैं ?

उत्तर : जिनका विपाक खासकर पुद्‌गल पर होता है उन्हें पुद्‌गल विपाकी कहते हैं। वे ६२ होती हैं– ५ शरीर. ५ बन्धन. ५ संघात. ३ अंगोपांग. ६ संस्थान. ६ संहनन. ८ स्पर्श .५ रस. २ गंध. ५ वर्ण, इस तरह पचास तथा निर्माण, आताप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरु लघु उपघात और परघात ये बारह, दोनों मिलकर ६२ होती हैं।

१२९. प्रश्न : भव विपाकी किसे कहते हैं ? और वे कौन कौन हैं ?

उत्तर : जिनका उदय नरकादि पर्यायों में होता है उन्हें भव

विपाकी कहते हैं। वे चार हैं- १. नरकायु २. तिर्यगायु ३. मनुष्यायु और ४. देवायु।

१३०. प्रश्न : क्षेत्र विपाकी किसे कहते हैं ? और वे कितनी हैं ?

उत्तर : जिनका उदय विग्रहगति रूप क्षेत्र में हो उन्हें क्षेत्र विपाकी कहते हैं। वे चार हैं- १. नरक-गत्यानुपूर्व्य, २. तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, ३. मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और ४. देवगत्यानुपूर्व्य।

१३१. प्रश्न : पुण्य प्रकृति किसे कहते हैं ? और वे कौन कौन हैं ?

उत्तर : जिनके उदय से संसारी जीव सुख का अनुभव करता है उन्हें पुण्य प्रकृति कहते हैं। वे भेद विवक्षा से ६८ और अभेद विवक्षा से ४२ हैं। यथा- १ साता वेदनीय २ तिर्यगायु ३ मनुष्यायु ४ देवायु ५ उच्च गोत्र ६ मनुष्यगति ७ मनुष्यगत्यानुपूर्वी ८ देवगति ९ देवगत्यानुपूर्वी १० पंचेन्द्रिय जाति १५ औदारिकादि पाँच शरीर २० औदारिकादि पांच बंधन २५ औदारिकादि पाँच संघात २८ औदारिकादि तीन अंगोपांग ४८ शुभ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के बीस ४९ समचतुरस्रसंस्थान ५० वज्रर्षभ नाराच संहनन

५१ अगुरुलघु ५२ परघात ५३ उच्छ्वास ५४ आतप ५५ उद्योत ५६ प्रशस्त विहायोगति ५७ त्रस ५८ बादर ५९ पर्याप्ति ६० प्रत्येक शरीर ६१ स्थिर ६२ शुभ ६३ सुभग ६४ सुस्वर ६५ आदेय ६६ यशस्कीर्ति ६७ निर्माण और ६८ तीर्थंकर। अभेदविवक्षा में ५ बंधन और ५ संघात की दस प्रकृतियाँ पाँच शरीर में गर्भित हो जाती हैं और वर्णादिक के बीस भेद न लेकर एक एक भेद लिया जाता है इस प्रकार २६ प्रकृतियाँ कम हो जाने से ४२ पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

१३२. प्रश्न : पाप प्रकृति किसे कहते हैं ? और वे कितनी तथा कौन कौन हैं ?

उत्तर : जिनके उदय में दुःख का अनुभव होता है उन्हें पाप प्रकृति कहते हैं ये भेद विवक्षा से बन्ध रूप ९८ और उदय रूप १०० हैं तथा अभेद विवक्षा में बन्ध ८२ और उदय रूप ८४ हैं। यथा- घातिया कर्मों की ४७, नीच गोत्र, असाता वेदनीय, नरकायु, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानु पूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, समचतुरस्र-को छोड़कर पाँच संस्थान, वज्रर्षभ नाराच को छोड़कर पाँच संहनन, अशुभ वर्णादि के बीस, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण,

अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति। ये १०० पाप प्रकृतियाँ हैं। इनमें सम्यग् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का बन्ध नहीं होता सिर्फ मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध होता है! सम्यक्त्व के प्रभाव से मिथ्यात्व के तीन खण्ड हो जाने पर इनकी सत्ता होती है तथा यथा समय उदय भी होता है अतः बन्ध की अपेक्षा ९८ और सत्त्व तथा उदय की अपेक्षा १०० हैं। वर्णादि की बीस प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनों रूप में होती हैं इसलिये दोनों में शामिल किया जाता है।

१३३. प्रश्न : आयुकर्म का बन्ध कब होता है ?

उत्तर : आयु कर्म का बन्ध, कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंच के वर्तमान आयु के दो भाग निकल जाने के बाद तृतीय भाग के प्रथम समय में होता है। यदि आयु बन्ध के योग्य लेश्या के अंश न होने से उस समय बन्ध न हो तो अवशिष्ट तृतीय भाग के दो भाग निकल जाने पर तृतीय भाग के प्रारंभ में होता है। इस प्रकार आठ अपकर्षकाल आते हैं। यदि इनमें बन्ध न हो तो वर्तमान आयु में जब

असंक्षेपाद्धा[1] प्रमाणकाल शेष रह जाता है तब नियम से परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध होता है। देव और नारकियों के वर्तमान आयु में छह मास शेष रहने पर आठ अपकर्ष काल होते हैं तथा भोग भूमिज मनुष्य और तिर्यंचों के वर्तमान आयु के नौ माह शेष रहने पर आठ अपकर्ष काल आते हैं।

१३४. प्रश्न : किस आयु का किस गुणस्थान तक बन्ध होता है ?

उत्तर : नरकायु का बन्ध प्रथम गुणस्थान तक, तिर्यंच आयु का बन्ध द्वितीय गुणस्थान तक, कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों की अपेक्षा मनुष्यायु का बन्ध द्वितीय गुणस्थान तक और देव तथा नारकियों की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थान तक होता है तृतीय गुणस्थान में किसी भी आयु का बन्ध नहीं होता। तिर्यंच के चतुर्थ और पंचम गुणस्थान में तथा

---

१. यह बात खास ध्यान रखने योग्य है कि असंक्षेपाद्धा काल आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण होता है, न कि असंख्यातवें भाग प्रमाण। (गो०क० पृष्ठ १२६ आर्यिका आदिमती जी की टीका सम्पा० ब्र० रतनचन्द मुख्तार एवं धवल ११/२६६, २७३, २७५ एवं ध० ११। १६२ की चरम पंक्ति आदि द्रष्टव्य हैं)

मनुष्य के चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान तक[1] देवायु का ही बन्ध होता है। अष्टमादि गुणस्थानों में आयुकर्म का बन्ध नहीं होता। तद्भव मोक्षगामी जीव के आयुकर्म का बन्ध नहीं होता। भोगभूमिज तथा कुभोगभूमिज मनुष्य और तिर्यंचों के नियम से देवायु का बन्ध होता है। सप्तम् नरक के नारकी के एक तिर्यंच आयु का ही बन्ध होता है। शेष नरक के नारकियों तथा बारहवें स्वर्ग तक के देवों के मनुष्यायु और तिर्यंचायु बन्ध योग्य है। तेरहवें स्वर्ग से लेकर सर्वार्थ सिद्धि तक के देव नियम से मनुष्यायु का ही बन्ध करते हैं। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव नियम से तिर्यंच आयु का बन्ध करते हैं। नरक से निकला हुआ जीव न एकेन्द्रिय होता है और न विकलत्रय; परन्तु दूसरे स्वर्ग तक का देव तेजस्कायिक और वायुकायिक को छोड़ शेष एकेन्द्रियों में उत्पन्न हो सकता है, पर

---

१. सप्तम गुणस्थान में बन्ध निष्ठापन ही है। तथा जो श्रेणी चढ़ने के सन्मुख नहीं है ऐसे स्वस्थान अप्रमत्त के ही अन्त समय में व्युच्छित्ति होती है। दूसरे सातिशय अप्रमत्त के बन्ध नहीं होता अतएव व्युच्छित्ति भी नहीं होती।

अप्रमत्त संयत के काल के संख्यात बहुभाग (अथवा संख्यातवें भाग) बीतने पर देवायु का बन्ध व्युच्छेद हो जाता है। (धवल ८/३०२, ३०७, ३५३, ३७१ आदि) अर्थात् चरम समयवर्ती अप्रमत्त तो अबन्धक ही रहता है।

विकलत्रयों में नहीं।

१३५. प्रश्न : एक साथ एक जीव के कितने कर्मों का बन्ध होता है ?

उत्तर : आयु कर्म का बन्ध प्रत्येक समय न होकर त्रिभाग में होता है अतः प्रत्येक समय शेष सात कर्मों का बन्ध होता है और त्रिभाग के समय आयु का बन्ध होने से आठों कर्मों का बन्ध होता है। मोहकर्म का बन्ध नवम् गुणस्थान तक ही होता है, अतः दशम् गुणस्थान में मोह और आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों का बन्ध होता है और ११-१२-१३ इन तीन गुणस्थानों में एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है। इस प्रकार ८, ७, ६ और १ कर्म का बन्ध होता है।

१३६. प्रश्न : उत्तर प्रकृतियों में सप्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर : उत्तर प्रकृतियों में परस्पर विरोधी प्रकृतियों का बन्ध एक साथ नहीं होता। जैसे जब सातावेदनीय का बन्ध हो रहा हो तब असातावेदनीय का बन्ध नहीं होगा और जब नीच गोत्र का बन्ध हो रहा हो तब उच्च गोत्र का बन्ध नहीं होगा। विरोधी प्रकृति की बन्ध व्युच्छित्ति हो जाने पर आगे

अवशिष्ट प्रकृति का ही निरन्तर बन्ध होता है। यथा, साता वेदनीयं और असातावेदनीय ये दोनों प्रकृतियाँ परस्पर विरोधी हैं। इनमें असातावेदनीय की बन्ध व्युच्छित्ति छठे गुणस्थान में हो जाती है अतः छठे गुणस्थान तक तो दो में से किसी एक का बन्ध होगा और सप्तम् गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक सातावेदनीय का ही प्रत्येक समय बन्ध होगा।

१३७. प्रश्न : तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कब और किसके होता है ?

उत्तर : तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर्मभूमिज मनुष्य के केवली या श्रुतकेवली के संनिधान में चतुर्थ से लेकर अष्टम् गुणस्थान के छठे भाग तक होता है। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध, प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, क्षायोपशमिक और क्षायिक, इन चारों सम्यग्दर्शनों में हो सकता है। जिस मनुष्य ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले तिर्यंच या मनुष्यायु का बन्ध कर लिया है उसे सम्यग्दृष्टि होने पर भी तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं होगा। हाँ, जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले नरक या देवायु का बन्ध किया है उसे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो सकता है। या जिसने किसी

भी आयु का बन्ध नहीं किया है वह तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर सकता है। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाला मनुष्य या तो उसी भव से मोक्ष जाता है या तृतीय भव में। उसका द्वितीय भव नरक या देवगति में व्यतीत होता है। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाला सम्यग्दृष्टि मनुष्य यदि नरक जावेगा तो प्रथम नरक तक ही जावेगा। यद्यपि द्वितीय और तृतीय नरक से निकलकर भी तीर्थंकर हो सकते हैं परन्तु वहाँ उत्पन्न होने वाले मनुष्य मृत्यु के समय मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं और जब तक मिथ्यादृष्टि रहते हैं तब तक तीर्थंकर प्रकृति के प्रदेशों का आस्रव बन्द रहता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने पर पुनः चालू हो जाता है। तीर्थंकर प्रकृति का ऐसा स्वभाव है कि प्रारंभ होने पर उसका आस्रव निरन्तर होता रहता है।

१३८. प्रश्न : आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग का बन्ध कहाँ होता है ?

उत्तर : आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग का बन्ध सप्तम् गुणस्थान से लेकर अष्टम् गुणस्थान के छठे भाग तक होता है तथा इनका उदय छठे गुणस्थान में ही होता

है अन्यत्र नहीं।

१३९. प्रश्न : किस संहनन का धारी जीव स्वर्ग और नरक में कहाँ तक उत्पन्न होता है ?

उत्तर : असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन वाले आठवें स्वर्ग तक, कीलक संहनन वाले बारहवें स्वर्ग तक, अर्ध नाराच संहनन वाले सोलहवें स्वर्ग तक, नाराच, वज्र नाराच वज्रर्षभनाराच- इन तीन संहननों वाले नवग्रैवेयक तक, वज्रनाराच, वज्रर्षभनाराच- इन दो संहननों वाले नव अनुदिश विमानों तक और वज्रर्षभ संहनन वाले अनुत्तर विमानों तक उत्पन्न होते हैं।

छह संहनन वाले संज्ञी जीव यदि नरक जावें तो तीसरे नरक तक, सृपाटिका को छोड़ शेष पाँच संहनन वाले पाँचवें नरक तक अर्धनाराच पर्यंत वाले छठे तक और वज्रर्षभ संहनन वाले सातवें नरक तक जाते हैं।

।। इति प्रथमाधिकारः ।।

द्वितीयाधिकारः

१४०. प्रश्न : बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : कषाय सहित जीव, कर्मरूप होने के योग्य पुद्गल परमाणुओं को जो ग्रहण करता है उसे बन्ध कहते हैं। जीव और कर्म का यह बन्ध नीर-क्षीर के समान एक क्षेत्रावगाह होकर संश्लेषात्मक संयोगरूप होता है।

१४१. प्रश्न : बन्ध के कितने भेद हैं ?

उत्तर : चार हैं- १ प्रकृति बन्ध २ स्थिति बन्ध ३ अनुभाग बन्ध और ४ प्रदेश बन्ध।

१४२. प्रश्न : प्रकृति बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म परमाणुओं में ज्ञान को आवृत करना आदि का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध है।

१४३. प्रश्न : स्थिति बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म प्रदेशों में फल देने की शक्ति का जो हीनाधिक काल है उसे स्थिति बन्ध कहते हैं।

१४४. प्रश्न : अनुभाग बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्म प्रदेशों में फल देने की शक्ति की जो हीनाधिकता है

उसे अनुभाग बन्ध कहते हैं।

१४५. प्रश्न : प्रदेश बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : ज्ञानावरणादि कर्मों के प्रदेशों की संख्या में जो हीनाधिकता लिये हुये परिणमन है उसे प्रदेश बन्ध कहते हैं।

१४६. प्रश्न : चतुर्विध बन्ध किन कारणों से होता है ?

उत्तर : प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से और स्थिति तथा अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

१४७. प्रश्न : प्रकृति बन्ध आदि के अवान्तर भेद कितने हैं ?

उत्तर : चार हैं- उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य; सबसे अधिक को उत्कृष्ट, उससे कम को अनुत्कृष्ट, सबसे कम को जघन्य और जघन्य से कुछ अधिक को अजघन्य कहते हैं। अनुत्कृष्ट से अजघन्य तक के भेद मध्यम कहे जाते हैं।[1]

---

१. अथवा, अनुत्कृष्ट व अजघन्य का स्वरूप ऐसे भी देखने को मिलता है। अजघन्य पद में जघन्य से आगे के सभी विकल्प देखे जाते हैं। (यानी जघन्य से भिन्न सब भेद अजघन्य स्वरूप हैं) इसी तरह उत्कृष्ट से नीचे के अनुत्कृष्ट संज्ञा वाले सब विकल्पों में जघन्य पद का भी प्रवेश देखा जाता है। (धवल पु. १२ पृ ५, ६) (यानी उत्कृष्ट से भिन्न सब भेद अनुत्कृष्ट रूप हैं)

१४८. प्रश्न : उत्कृष्ट बन्ध आदि के अवान्तर भेद कितने हैं ?

उत्तर : चार हैं- सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव। जो बन्ध रुककर पुनः जारी होता है वह सादि बन्ध है, जो बन्ध व्युच्छित्ति तक अनादि से चला आता है उसे अनादि बन्ध कहते हैं। जो बन्ध निरन्तर होता रहता है उसे ध्रुव बन्ध कहते हैं तथा जो बन्ध अन्तर सहित होता है उसे अध्रुव बन्ध कहते हैं। अभव्य जीव का ध्रुव और भव्य जीव का अध्रुव बन्ध होता है।

१४९. प्रश्न : मूल प्रकृतियों में सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेद किस प्रकार घटित होते हैं ?

उत्तर : वेदनीय और आयु कर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों का सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव-चारों प्रकार का बन्ध होता है। वेदनीय कर्म का सादि को छोड़कर शेष तीन प्रकार का बन्ध होता है[1] तथा आयु कर्म का सादि और अध्रुव ही बन्ध होता है।

---

१. वेदनीय का सादि बन्ध नहीं होता है, क्योंकि उपशम श्रेणी चढ़ने पर भी वेदनीय सामान्य के बन्ध का अभाव नहीं होता। (गो० क० पृ० १००, ६१२, टीका पू० आ० आदिमतिजी; सम्पा० रतनचंद जी मुख्तार)।

१५०. प्रश्न : ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं और वे कितनी तथा कौन-कौन हैं ?

उत्तर : बन्ध व्युच्छित्ति पर्यंत जिनका निरन्तर बन्ध होता रहता है उन्हें ध्रुव बन्धी प्रकृतियाँ कहते हैं। वे ४७ हैं जैसे- मोहनीय के बिना तीन घातिया कर्मों की १९ प्रकृतियाँ (५+९+५=१९) मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क आदि १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और अभेद विवक्षा से वर्णादि की ४। इनका अपनी अपनी बन्ध व्युच्छित्ति के गुणस्थान तक निरन्तर बन्ध होता रहता है। इनके सिवाय शेष रही ७३ प्रकृतियाँ अध्रुव बन्धी हैं। इनमें सादि और अध्रुव- दो ही बन्ध होते हैं।

१५१. प्रश्न : अध्रुवबन्धी प्रकृतियों में सप्रतिपक्ष और अप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ कौन-कौन हैं ?

उत्तर : तीर्थंकर आहारक युगल, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और चारों आयु ये ११ प्रकृतियाँ अप्रतिपक्ष-विरोधी रहित हैं अर्थात् जिस समय इनका बन्ध होता है उस समय होता ही है, और न होवे तो नहीं होता। बाकी ६२ प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी हैं-विरोधी सहित हैं जैसे सातावेदनीय

और असातावेदनीय आदि। इनमें जब एक का बन्ध होता है तब दूसरी का नहीं होता। तीर्थंकर, आहारक युगल तथा चार आयु, इन सात प्रकृतियों के निरन्तर बन्ध होने का काल अन्तर्मुहूर्त है और शेष का एक समय।

१५२. प्रश्न : बन्ध, उदय और सत्त्व योग्य प्रकृतियां कितनी हैं?

उत्तर : आचार्यों ने बन्ध और उदय का वर्णन अभेद विवक्षा से किया है और सत्त्व का भेद विवक्षा से। अभेद विवक्षा में पाँच बन्धन, पाँच संघात तथा वर्णादिक की सोलह और सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व-प्रकृति इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतियों के कम होने से १२० प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हैं। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति का उदय आता है इसलिये उदय योग्य १२२ प्रकृतियाँ हैं। सम्यग्मिथ्यात्व का उदय तृतीय गुणस्थान में और सम्यक्त्व प्रकृति का उदय चतुर्थ से लेकर सप्तम् गुणस्थान तक होता है। सत्त्व ५+९+२+२८+४+९३+२+५=१४८ प्रकृतियों का होता है।

१५३. प्रश्न : बन्ध त्रिभंगी किसे कहते हैं ?

उत्तर : बन्ध व्युच्छित्ति, बन्ध और अबन्ध को बन्ध त्रिभंगी कहते हैं। इन तीनों का गुणस्थानों और मार्गणाओं में वर्णन

किया जाता है।

१५४. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है ?

उत्तर : प्रथम गुणस्थान में १६, द्वितीय गुणस्थान में २५, तृतीय गुणस्थान में शून्य, चतुर्थ गुणस्थान में १०, पंचम् गुणस्थान में ४, षष्ठम् गुणस्थान में ६, सप्तम् गुणस्थान में १, अष्टम् गुणस्थान में ३६, नवम् गुणस्थान में ५, दशम् गुणस्थान में १६, एकादश और द्वादश गुणस्थान में शून्य तथा त्रयोदश गुणस्थान में एक प्रकृति की बन्ध व्युच्छित्ति होती है। चतुर्दश गुणस्थान में बन्ध और बन्ध व्युच्छित्ति कुछ भी नहीं है।

१५५. प्रश्न : प्रथम-मिथ्यात्व गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १६ प्रकृतियाँ कौन कौन हैं ?

उत्तर : १. मिथ्यात्व, २. हुण्डक संस्थान, ३ नपुंसकवेद, ४ असंप्राप्त सृपाटिका संहनन, ५ एकेन्द्रिय जाति, ६ स्थावर, ७ आतप, ८ सूक्ष्म, ९ अपर्याप्त, १० साधारण, ११ द्वीन्द्रिय, १२ त्रीन्द्रिय, १३ चतुरिन्द्रिय जाति,

१४ नरकगति, १५ नरकगत्यानुपूर्वी और १६ नरकायु। इन सोलह प्रकृतियों का बन्ध प्रथम गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं।

१५६. प्रश्न : द्वितीय-सासादन गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली २५ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : अनन्तानुबन्धी की चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधादि चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत और तिर्यगायु इन पच्चीस प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति द्वितीय गुणस्थान में होती है।

१५७. प्रश्न : चतुर्थ-असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली दस प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु, इन दस प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति चतुर्थ गुणस्थान में होती है।

१५८. प्रश्न : पंचम - देशविरत गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने

वाली ४ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया और लोभ इन चार प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति पंचम् गुणस्थान में होती है।

१५९. प्रश्न : षष्ठम्-प्रमत्त संयत गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ६ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक, इन छह प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति षष्ठम् गुणस्थान में होती है।

१६०. प्रश्न : सप्तम्-अप्रमत्त संयत गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली एक प्रकृति कौन है ?

उत्तर : देवायु, इस एक प्रकृति की बंध व्युच्छित्ति सप्तम् गुणस्थान में होती है।

१६१. प्रश्न : अष्टम्-अपूर्वकरण गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ३६ प्रकृतियाँ कौन हैं?

उत्तर : अपूर्वकरण गुणस्थान के सात भाग हैं उनमें मरण रहित प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन दो को छठे भाग के अन्त समय में तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, आहारक शरीर, आहारक

शरीरांगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय, इन तीस की तथा अन्त के सप्तम् भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार की; सब मिलाकर अष्टम् गुणस्थान में छत्तीस प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

१६२. प्रश्न : नवम्–अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ५ प्रकृतियाँ कौन हैं?

उत्तर : अनिवृत्तिकरण के पाँच भागों में क्रम से पुरुष वेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इन पाँच प्रकृतितों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

१६३. प्रश्न : दशम्–सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १६ प्रकृतियाँ कौन हैं?

उत्तर : ज्ञानावरण की ५, अन्तराय की ५, दर्शनावरण की चार–चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, उच्च गोत्र और यशस्कीर्ति इन सोलह प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति दशम् गुणस्थान के अन्त में होती है।

१६४. प्रश्न : त्रयोदश-सयोग केवली गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १ प्रकृति कौन है ?

उत्तर : सातावेदनीय, इस एक प्रकृति की बंध व्युच्छित्ति त्रयोदशगुणस्थान में होती है ?

१६५. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानों में क्रम से ११७, १०१, ७४, ७७, ६७, ६३, ५६, ५८, २२, १७, १, १, १, प्रकृतियों का बन्ध होता है। चौदहवें गुणस्थान में किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं होता।

१६६. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का अबन्ध है ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में क्रम से ३, १६, ४६, ४३, ५३, ५७, ६१, ६२, ९८, १०३, ११६, ११६, ११६, १२० प्रकृतियों का अबन्ध है।

१६७. प्रश्न : मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में बन्ध त्रिभंगी की योजना किस प्रकार की जावे ?

उत्तर : कुल बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १२० हैं उनमें से तीर्थंकर का

बन्ध चतुर्थ से लेकर अष्टम् गुणस्थान तक होता है तथा आहारक युगल का बन्ध सप्तम् अष्टम् में होता है, अतः तीन प्रकृतियाँ प्रथम गुणस्थान में अबन्धनीय होने से कम हो गईं। फलस्वरूप प्रथम गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति १६ की, बन्ध ११७ का और अबन्ध ३ का है। प्रथम गुणस्थान की व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियाँ घट जाने से द्वितीय गुणस्थान में बन्ध योग्य १०१ प्रकृतियाँ रह गईं अतः बन्ध व्युच्छित्ति २५ की, बन्ध १०१ का और अबन्ध १६+३=१९ का है। द्वितीय गुणस्थान की व्युच्छिन्न २५ प्रकृतियाँ कम हो जाने से ७६ रहीं पर तृतीय गुणस्थान में आयु का बन्ध नहीं होता अतः २ प्रकृतियाँ और कम हो गईं। इस तरह तृतीय गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति शून्य की, बन्ध ७४ का और अबन्ध १९+२५+२=४६ का है। चतुर्थ गुणस्थान में मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होने लगता है अतः बन्ध ७४+३=७७ का है। बन्ध व्युच्छित्ति १० की, बन्ध ७७ का और अबन्ध ४६-३=४३ का है। चतुर्थ गुणस्थान की व्युच्छिन्न १० प्रकृतियाँ घट जाने से पंचम् गुणस्थान में बन्ध ६७ का, बन्ध व्युच्छित्ति ४ की और अबन्ध ४३+१०=५३ का है। पंचम् गुणस्थान से व्युच्छिन्न ४ प्रकृतियाँ घट जाने से छटे

गुणस्थान में बन्ध ६३ का, बन्ध व्युच्छित्ति ६ की और अबन्ध ५३+४=५७ का है। षष्ठम् गुणस्थान की व्युच्छिन्न ६ प्रकृतियाँ कम करने और आहारक युगल मिलाने से सप्तम् गुणस्थान में बन्ध ५९ का बन्ध व्युच्छित्ति १ की और अबन्ध ५७+६=६३, ६३-२=६१ का है। सप्तम् की व्युच्छिन्न १ प्रकृति कम हो जाने से अष्टम् गुणस्थान में बन्ध ५८ का, बन्ध व्युच्छित्ति ३६ की और अबन्ध ६१+१=६२ का है। अष्टम् में व्युच्छिन्न ३६ प्रकृतियाँ कम हो जाने से नवम् में बन्ध २२ का, बन्ध व्युच्छित्ति ५ की और अबन्ध ६२+३६=९८ का है। नवम् की व्युच्छिन्न ५ प्रकृतियाँ कम हो जाने से दशम् गुणस्थान में बन्ध १७ का बन्ध व्युच्छित्ति १६ की और अबन्ध ९८+५=१०३ का है। दशम् की व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियाँ कम हो जाने से ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानों में बन्ध १ का और अबन्ध ११९ का है। ११वें और १२वें गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति शून्य है। तेरहवें गुणस्थान में १ की बन्ध व्युच्छित्ति हो जाने से चौदहवें गुणस्थान में बन्ध और बन्ध व्युच्छित्ति शून्य तथा अबन्ध १२० प्रकृतियों का है। पिछले गुणस्थान की बन्ध प्रकृतियों में से उसकी व्युच्छित्ति कम करने पर आगामी गुणस्थान का बन्ध

निकलता है तथा वर्तमान गुणस्थान की व्युच्छित्ति और वर्तमान गुणस्थान का अबन्ध मिलाने से आगामी गुणस्थान का अबन्ध निकलता है। अन्य प्रकृतियों के मिलाने और घटाने की योजना निर्देशानुसार कर लेना चाहिये।

१६८. प्रश्न : ज्ञानावरणादि मूल प्रकृतियों का स्थिति बन्ध कितना है ?

उत्तर : ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ा कोड़ी सागर, नाम और गोत्र का बीस कोड़ा कोड़ी सागर, मोह का सत्तर कोड़ा, कोड़ी सागर, आयु कर्म का तैंतीस सागर है। विशेष-दर्शनमोह-मिथ्यात्व का सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर और चारित्र मोहनीय का चालीस कोड़ा कोड़ी सागर है। असातावेदनीय का तीस कोड़ा कोड़ी सागर और सातावेदनीय का पन्द्रह कोड़ा कोड़ी सागर है।

१६९. प्रश्न : मूल प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबन्ध क्या है ?

उत्तर : वेदनीय का जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त, नाम और गोत्र का आठ मुहूर्त तथा शेष कर्मों का अन्तर्मुहूर्त है। प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबन्ध व्युच्छित्ति के समय होता है। अर्थात् जिस प्रकृति की जहाँ बन्ध व्युच्छित्ति होती

वही होता है। विशेष–तीर्थंकर प्रकृति तथा आहारक युगल का जघन्य स्थितिबन्ध अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर होता है। मनुष्यायु तथा तिर्यगाय का जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त तथा देवायु और नरकायु का दस हजार वर्ष होता है।

१७०. प्रश्न : उत्कृष्ट स्थितिबंध का कारण क्या है ?

उत्तर : तीन शुभ आयु के बिना अन्य ११७ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध यथासंभव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है और जघन्य स्थितिबन्ध इससे विपरीत अर्थात् मन्दकषाय रूप परिणामों से होता है। तीन शुभायुकर्मों का विशुद्ध परिणामों से उत्कृष्ट और संक्लेश परिणामों से जघन्य स्थितिबन्ध होता है। विशेष- देवायु का उत्कृष्ट स्थितिबंध, सप्तम् गुणस्थान में चढ़ने के सन्मुख प्रमत्त गुणस्थान वाला करता है। आहारक युगल का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, छटे गुणस्थान में उतरने के सन्मुख सप्तम् गुणस्थान वाला और तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नरक जाने के लिये सन्मुख चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि करता है। तीर्थंकर, आहारकद्विक और देवायु इन चार प्रकृतियों के सिवाय अन्य ११६ प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है।

१७१. प्रश्न : आबाधा किसे कहते हैं ?

उत्तर : कर्मरूप होकर आया हुआ द्रव्य जब तक उदय या उदीरणा रूप न हो तब तक के काल को आबाधा कहते हैं।

१७२. प्रश्न : किस कर्म की कितनी आबाधा होती है ?

उत्तर : आबाधा का विचार उदय और उदीरणा के भेद से दो प्रकार का होता है। उदय की अपेक्षा, आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की आबाधा, एक कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति पर सौ वर्ष की होती है इसी अनुपात से सब स्थितियों की आबाधा समझना चाहिये। जैसे जिस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर की बँधी है उसकी आबाध सात हजार वर्ष की होगी अर्थात् इतने समय तक वे कर्म परमाणु उदय में नहीं आवेंगे।

विशेष– जिन कर्मों की स्थिति अन्तः कोड़ा कोड़ी प्रमाण बँधी है उनकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त की होती है। आयुकर्म की आबाधा एक करोड़ पूर्व के तृतीय भाग से लेकर असंक्षेपाद्धा काल तक होती है। उदीरणा की अपेक्षा सब कर्मों की आबाधा एक आवली प्रमाण होती है अर्थात् बँधी हुई कर्म प्रकृति की एक अचलावली के बाद उदीरणा हो सकती

है। आयुकर्म की उदीरणा में यह ध्यान रखना चाहिये कि परभव सम्बन्धी आयु की उदीरणा नहीं होती, मात्र वर्तमान आयु की हो सकती है।

१७३. प्रश्न : बद्ध कर्म उदय में किस प्रकार आते हैं ?

उत्तर : जिस कर्म की जितनी स्थिति बँधी है उसमें से आबाधाकाल को घटा देने पर जो काल शेष रहता है उसमें कर्म परमाणु निषेक रचना के अनुसार फल देते हुए निर्जीर्ण होते जाते हैं-खिरते जाते हैं। आबाधा व्यतीत होने पर प्रथम निषेक में बहुत कर्म परमाणु खिरते हैं पश्चात् आगे-आगे के निषेकों में कम होते जाते हैं। यह क्रम बाँधे हुए कर्म की स्थिति के अन्त तक चलता रहता है । यह सविपाक निर्जरा का क्रम है यदि तपश्चरणादि के योग से अविपाक निर्जरा का अवसर आता है तो एक साथ बहुत कर्म परमाणु खिर जाते हैं।

१७४. प्रश्न : कर्मों में अनुभाग फल देने की शक्ति किस प्रकार पड़ती है ?

उत्तर : अनुभाग बन्ध में हीनाधिकता कषाय के अनुसार होती है। विशुद्ध परिणाम-मन्दकषाय रूप परिणामों से शुभ कर्मों में अधिक अनुभाग पड़ता है और अशुभ कर्मों में कम

तथा संक्लेशरूप परिणामों से शुभ कर्मों में कम और अशुभ कर्मों में अधिक अनुभाग पड़ता है।

१७५. प्रश्न : घातिया कर्मों का अनुभाग किस प्रकार होता है ?

उत्तर : घातिया कर्मों के अनुभाग को आचार्यों ने लता (बेल), दारु (काष्ठ), अस्थि (हड्डी) और शैल (पाषाण) के दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया है अर्थात् जिस प्रकार लता, दारु, हड्डी और पाषाण में आगे आगे कठोरता बढ़ती जाती है उसी प्रकार कर्म प्रकृतियों के अनुभाग-फल देने की शक्ति में कठोरता बढ़ती जाती है। उपर्युक्त दृष्टान्तों में लता और दारु के अनन्तवें भाग तक के स्पर्धक देशघाति रूप होते हैं और दारु के शेष बहुभाग तथा हड्डी और पाषाण सम्बन्धी अनुभाग सर्वघाति रूप होते हैं।

१७६. प्रश्न : अघातिया कर्मों का अनुभाग किस प्रकार होता है?

उत्तर : अघातिया कर्मों में जो सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियाँ हैं उनका अनुभाग गुड़, खांड, शक्कर और अमृत के समान होता है और जो असातावेदनीय आदि पाप प्रकृतियाँ

हैं उनका अनुभाग नीम, कांजीर, विष और हलाहल के समान होता है। तात्पर्य यह है कि पुण्य पाप के असंख्यात लोक प्रमाण अवान्तर भेद हैं। अनुभाग के अनुसार ही जीव के सुख दुःख में हीनाधिकता होती है। जैसे देवगति और देवायु रूप पुण्य प्रकृति के समान होने पर भी अभियोग्य जाति के देव को वाहन बनना पड़ता है जिससे वह संक्लेश का अनुभव करता है और उस पर बैठने वाला सुख का अनुभव करता है।

१७७. प्रश्न : प्रदेश बन्ध में समय प्रबद्ध का स्वरूप और परिमाण कितना है ?

उत्तर : पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध तथा शीत-उष्ण, स्निग्ध रूक्ष इन चार स्पर्शों से सहित कार्मण वर्गणा का जो पिण्ड एक समय में बँधता है उसका प्रमाण सिद्धों के अनन्तवें भाग एवं अभव्यराशि से अनन्तागुणा होता है।[1] यही समयप्रबद्ध कहलाता है।

१७८. प्रश्न : समय प्रबद्ध का ज्ञानावरणादि कर्मों में विभाग कौन करता है और किस अनुपात से होता है ?

१- अर्थात् यह संख्या इतनी है कि अभव्यों से अनन्तगुणी होती हुई भी सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण ही है।

उत्तर : बन्धावस्था को प्राप्त हुए समय प्रबद्ध में ज्ञानावरणादि परिणमन स्वयं हो जाता है। आठ कर्मों में सबसे अधिक प्रदेश वेदनीय को, उससे कम मोहनीय को, उससे कम परन्तु परस्पर में समान ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तराय को, उससे कम परन्तु परस्पर में समान नाम और गोत्र को तथा आयु कर्म को सबसे कम प्रदेश प्राप्त होते हैं।

१७९. प्रश्न : प्रदेश बन्ध का प्रमुख कारण क्या है ? और उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : प्रदेश बन्ध का प्रमुख कारण योग स्थान-आत्मप्रदेश परिस्पन्द के विकल्प हैं। उसके तीन भेद हैं- १ उपपाद योग स्थान, २ एकान्तानुवृद्धि योग स्थान और ३ परिणाम योग स्थान। नवीन पर्याय के प्रथम समय में स्थित जीव के उपपाद योग स्थान होता है। पर्याय धारण करने के दूसरे समय से लेकर शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने तक नियम से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ एकान्तानुवृद्धि योग स्थान होता है और शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर जीवन पर्यन्त परिणाम योग स्थान होता है। इसमें आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द कभी कम और कभी बढ़ता रहता है। इसका दूसरा नाम घोटमान योगस्थान

भी है।

१८०. **प्रश्न : उत्कृष्ट तथा जघन्य प्रदेश बन्ध की सामग्री क्या है ?**

उत्तर : उत्कट योगों से सहित, संज्ञी, पर्याप्तक और अल्पप्रकृतियों का बन्ध करने वाला जीव उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध को करता है और इससे विपरीत जीव जघन्य प्रदेश बन्ध को करता है।

१८१. **प्रश्न : मूल प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध किस गुणस्थान में होता है ?**

उत्तर : आयुकर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध छह गुणस्थानों के अनन्तर सप्तम् गुणस्थान में रहने वाला करता है। मोहनीय का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध नवम् गुण स्थानवर्ती करता है और शेष छह कर्मों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध उत्कृष्ट योगों को धारण करने वाला सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान वाला करता है।

१८२. **प्रश्न : जघन्य प्रदेश बन्ध किसके होता है ?**

उत्तर : सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपनी पर्याय के प्रथम समय में जघन्य योग के द्वारा आयु के सिवाय शेष

सात कर्मों का जघन्य प्रदेश बन्ध करता है। आगे चलकर आयु का बन्ध होने पर इसी जीव के आयुकर्म का भी जघन्य प्रदेश बन्ध होता है।

॥ द्वितीयाधिकारः समाप्त ॥

तृतीयाधिकारः

१८३. प्रश्न : उदय किसे कहते हैं ?

उत्तर : द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार कर्मों का फल देने लगना उदय कहलाता है।

१८४. प्रश्न : किस प्रकृति का किस गुणस्थान में उदय होता है ?

उत्तर : आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग का उदय छठे गुणस्थान में, तीर्थंकर प्रकृति का केवली तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में, सम्यङ्मिथ्यात्व का तृतीय गुणस्थान में, सम्यक्त्व प्रकृति का वेदक सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ से लेकर सप्तम् गुणस्थान तक, आनुपूर्वी का उदय प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थान में, अनन्तानुबन्धी का उदय प्रथम, द्वितीय गुणस्थान में, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय प्रथम से पंचम गुणस्थान तक, संज्वलन क्रोध, मान, माया का उदय प्रथम से लेकर नवम् गुणस्थान तक और संज्वलन लोभ का प्रथम से लेकर दशम् गुणस्थान तक, नरकायु और देवायु का उदय प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक, तिर्यगायु का उदय प्रथम से लेकर पंचम्

तक और मनुष्यायु का उदय प्रारंभ से लेकर सभी गुणस्थानों में होता है। परन्तु सासादन गुणस्थान में मरा हुआ जीव नरक गति में उत्पन्न नहीं होता, अतः उसके नरक गत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होता। शेष कर्म प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपनी-अपनी उदय व्युच्छित्ति के अन्तिम समय तक होता है।

१८५. प्रश्न : उदय त्रिभंगी किसे कहते हैं ?

उत्तर : उदय व्युच्छित्ति उदय और अनुदय को उदय त्रिभंगी कहते हैं।

१८६. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है ?

उत्तर : अभेद विवक्षा से मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में क्रम से १०, ४, १, १७, ८, ५, ४, ६, ६, १, २, (२, १४), २९ और १३ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

१८७. प्रश्न : भूतबली आचार्य के उपदेशानुसार किस गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है ?

उत्तर : भूतबली आचार्य के उपदेशानुसार मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ५, ९, १, १७, ८, ५, ४, ६, ६, १, २, १६, ३० और १२ कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

१८८. प्रश्न : दोनों पक्षों में विशेष भेद क्या है ?

उत्तर : किन्हीं आचार्यों के मत से एकेन्द्रिय और विकलत्रय में सासादन गुणस्थान नहीं होता इसलिये एकेन्द्रिय, स्थावर और द्वीन्द्रियादि तीन जातियाँ, इन प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति पहले गुण स्थान में ही हो जाती है फलस्वरूप पहले में १० और दूसरे में ४ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। बारहवें गुणस्थान के उपान्त्य में २ की और अन्त्य समय में १४ की दोनों मिलाकर १६ की व्युच्छित्ति कही गई है। चौदहवें गुणस्थान में परस्पर विरोधी होने से साता-असातावेदनीय दोनों का एक साथ उदय नहीं होता अतः १ की व्युच्छित्ति तेरहवें में और १ की चौदहवें में मानी गई है परन्तु नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का उदय संभव है अतः २९, १३ और ३०, १२ का विकल्प बन जाता है। यहाँ भूतबली आचार्य के मतानुसार उदय त्रिभंगी का वर्णन किया गया है।

१८९. प्रश्न : मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ५ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन पाँच प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में

होती है अर्थात् द्वितीयादि गुणस्थानों में इनका उदय नहीं रहता।

१९०. प्रश्न : द्वितीय गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ९ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति और चतुरिन्द्रिय जाति, इन नौ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति द्वितीय गुणस्थान में होती है।

१९१. प्रश्न : तृतीय गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली एक प्रकृति कौन है ?

उत्तर : सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति, इसकी उदय व्युच्छित्ति तृतीय गुणस्थान में होती है।

१९२. प्रश्न : चतुर्थ गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १७ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिक शरीरांगोपांग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति।

१६३. प्रश्न : पंचम् गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ८ प्रकृतियाँ कौन हैं?

उत्तर : प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ तिर्यगायु, उद्योत, नीच गोत्र और तिर्यग्गति, इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति पंचम् गुणस्थान में होती है।

१६४. प्रश्न : षष्ठम् गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ५ प्रकृतियाँ कौन हैं?

उत्तर : आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा और प्रचला प्रचला, इन ५ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति छटे गुणस्थान में होती है।

१६५. प्रश्न : सप्तम् गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ४ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : सम्यक्त्व प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्त सृपाटिका संहनन, इन चार प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति सप्तम् गुणस्थान में होती है।

१६६. प्रश्न : अष्टम् गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ६ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्त अष्टम् गुणस्थान में होती है?

१९७. प्रश्न : नवम् गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ६ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध-मान और माया इन छह प्रकृतियों की उदय-व्युच्छित्ति नवम् गुणस्थान में होती है।

१९८. प्रश्न : दशम् गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १ प्रकृति कौन है ?

उत्तर : संज्वलन लोभ, इस एक प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति दशम् गुणस्थान में होती है।

१९९. प्रश्न : एकादश गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली २ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : वज्रनाराच और नाराच संहनन, इन दो प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति ग्यारहवें गुणस्थान में होती है।

२००. प्रश्न : द्वादश गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १६ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : निद्रा और प्रचला इन दो की उपान्त्य समय में तथा ५ ज्ञानावरण ५ अन्तराय और चार दर्शनावरण इन १४ की दोनों मिलाकर १६ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति बारहवें गुणस्थान में होती है।

२०१. प्रश्न : त्रयोदश गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली ३० प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : वेदनीय कर्म की साता-असाता वेदनीय में से एक, वज्रर्षभ नाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रादि ६ संस्थान, वर्णादि ४ अगुरु लघु आदि चार और प्रत्येक शरीर इन तीस प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति तेरहवें गुणस्थान में होती है।

२०२. प्रश्न : चतुर्दश गुणस्थान में व्युच्छिन्न होने वाली १२ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : साता-असाता वेदनीय में से कोई एक प्रकृति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, श्वासोच्छ्वास, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और मनुष्यायु इन बारह प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति चौहदवें गुणस्थान में होती है।

२०३. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७६, ७२, ६६, ६०, ५९, ५७, ४२ और १२ प्रकृतियों का उदय होता है।

२०४. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का अनुदय होना है ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से ५, ११, २२, १८, ३५, ४१, ४६, ५०, ५६, ६२, ६३, ६५, ८० और ११० प्रकृतियों का उदय होता है।

२०५. प्रश्न : गुणस्थानों में उदय त्रिभंगी की योजना किस प्रकार होती है ?

उत्तर : कुल, उदय योग्य प्रकृतियाँ १२२ हैं उनमें से प्रथम गुणस्थान में सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग और तीर्थंकर इन पाँच प्रकृतियों का उदय न होने से ११७ का उदय है। उपर्युक्त ५ का अनुदय है और ५ की उदय व्युच्छित्ति है। प्रथम गुणस्थान के उदय ११७ में से उदय व्युच्छित्ति की ५ तथा नरकगत्यानुपूर्वी के घटाने से द्वितीय गुणस्थान में उदय १११ का है। उदय व्युच्छित्ति की ५ और अनुदय की पाँच ऐसे १० प्रकृतियों में नरकगत्यानुपूर्वी के मिल जाने से अनुदय ११ का और उदय व्युच्छित्ति ९ की है। सासादन की उदय योग्य १११ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ९ प्रकृतियाँ घटाने से १०२ रहीं परन्तु तृतीय गुणस्थान में

मृत्यु न होने से किसी भी आनुपूर्वी का उदय नहीं रहता। नरक गत्यानुपूर्वी पहले से घटी हुई है अतः ३ आनुपूर्वियों के घटाने से ६६ रहीं उनमें सम्यगमिथ्यात्व प्रकृति के मिल जाने से तृतीय गुणस्थान में उदय १०० का है। पिछले अनुदय की ११ और उदय व्युच्छित्ति की ६ प्रकृतियाँ मिलाने से २० हुई उसमें ३ आनुपूर्वी मिलाने और १ सम्यगमिथ्यात्व प्रकृति के घटाने से तृतीय गुणस्थान में अनुदय २२ का है तथा उदय व्युच्छित्ति १ की है। तृतीय गुणस्थान की उदय योग्य १०० प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की १ प्रकृति घटाने से ६६ रहीं। इनमें आनुपूर्वी की ४ तथ सम्यक्त्व प्रकृति के मिलाने से चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य १०४ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की २२ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की १ प्रकृति मिलाने से २३ हुई, उनमें से ४ आनुपूर्वी और १ सम्यक्त्व प्रकृति के घटाने से चतुर्थ गुणस्थान में अनुदय १८ का है और उदय व्युच्छित्ति १७ की है। चतुर्थ गुणस्थान की उदय योग्य १०४ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की १७ प्रकृतियाँ घटा देने से पंचम् गुणस्थान में उदय योग्य ८७ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की १८ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की १७ प्रकृतियाँ मिल जाने से पंचम् गुणस्थान

में अनुदय ३५ का और उदय व्युच्छित्ति ८ की है। पंचम् गुणस्थान की उदय योग्य ८७ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ८ प्रंकृतियाँ घटाने तथा आहारक युगल के मिलाने से षष्ठम् गुणस्थान में उदय योग्य ८१ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ३५ प्रंकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की ८ प्रकृतियाँ मिलाने और आहारक युगल के घटाने से अनुदय योग्य ४१ प्रकृतियाँ हैं तथा उदय व्युच्छित्ति ५ की है। षष्ठम् गुणस्थान के उदय योग्य ८१ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ५ प्रकृतियाँ कम होने से सप्तम् गुणस्थान में उदय योग्य ७६ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ४१ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की ५ प्रकृतियाँ मिलाने से सप्तम् गुणस्थान में अनुदय योग्य ४६ प्रकृतियाँ हैं तथा उदय व्युच्छित्ति ४ की है। सप्तम् गुणस्थान की उदय योग्य ७६ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ४ प्रकृतियाँ कम कर देने से अष्टम् गुणस्थान में ७२ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। पिछले अनुदय की ४६ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की ४ प्रकृतियाँ मिल जाने से अष्टम् गुणस्थान में अनुदय योग्य ५० प्रकृतियाँ हैं और ६ की उदय व्युच्छित्ति है। अष्टम् गुणस्थान की उदय योग्य ७२ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ६ प्रकृतियाँ कम कर

देने से नवम् गुणस्थान में उदय योग्य ६६ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ५० प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की ६ मिला देने से नवम् गुणस्थान में अनुदय योग्य ५६ प्रकृतियाँ होती हैं और ६ की उदय व्युच्छित्ति है। नवम् गुणस्थान की उदय योग्य ६६ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ६ प्रकृतियाँ कम हो जाने से दशम् गुणस्थान में उदय योग्य ६० प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ५६ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की ६ प्रकृतियाँ मिलाने से ६२ प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और १ की उदय व्युच्छित्ति है। दशम् गुणस्थान की उदय योग्य ६० प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की १ प्रकृति कम हो जाने से एकादश गुणस्थान में उदय योग्य ५९ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ६२ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की १ प्रकृति मिल जाने से ६३ प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं। २ की उदय व्युच्छित्ति है। एकादश गुणस्थान की उदय योग्य ५९ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की २ प्रकृतियाँ कम कर देने से द्वादश गुणस्थान में उदय योग्य ५७ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ६३ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की २ प्रकृतियाँ मिल जाने से ६५ प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और १६ की उदय व्युच्छित्ति है। द्वादश गुणस्थान की

उदय योग्य ५७ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की १६ प्रकृतियाँ कम हो जाने और १ तीर्थंकर प्रकृति के मिल जाने से त्रयोदश गुणस्थान में ४२ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। पिछले अनुदय की ६५ प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की १६ प्रकृतियों के मिलाने और १ तीर्थंकर प्रकृति के घटाने से ८० प्रकृतियों का अनुदय है तथा ३० की उदय व्युच्छित्ति है। त्रयोदश गुणस्थान की उदय योग्य ४२ प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की ३० प्रकृतियाँ कम करने से चतुर्दश गुणस्थान में उदय योग्य १२ प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की ८० प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की ३० प्रकृतियाँ मिलाने से अनुदय योग्य ११० प्रकृतियाँ हैं और १२ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति है।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में उदय त्रिभंगी की योजना है।

२०६. प्रश्न : उदय और उदीरणा में क्या अन्तर है ?

उत्तर : आबाधा पूर्ण होने पर निषेक रचना के अनुसार कर्मों का फल प्राप्त होना उदय कहलाता है और विशिष्ट कारणों से आबाधाकाल के पूर्व ही कर्मों का उदय में आ जाना उदीरणा है।

२०७. प्रश्न : उदय और उदीरणा की अपेक्षा कर्म प्रकृतियों में क्या विशेषता है ?

उत्तर : प्रमत्त संयत, सयोग केवली और अयोग केवली इन तीन गुणस्थानों को छोड़कर अन्य गुणस्थानों में स्वामित्व की अपेक्षा उदय और उदीरणा में कोई विशेषता नहीं है। सयोग केवली की उदय व्युच्छित्ति की ३० और अयोग केवली की उदय व्युच्छित्ति की १२ प्रकृतियों को मिलाकर उन ४२ प्रकृतियों में से सातावेदनीय, असातावेदनीय और मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को घटाना चाहिये। इन घटायी हुई तीन प्रकृतियों की उदीरणा प्रमत्त विरत नामक छठे गुणस्थान में होती है और शेष ३६ प्रकृतियों की उदीरणा सयोग केवली के होती है तथा वहीं इनकी उदीरणा व्युच्छित्ति भी होती है। अयोग केवली के उदीरणा नहीं होती।

२०८. प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है ?

उत्तर : मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोग केवली गुणस्थान तक क्रम से ५, ९, १, १७, ८, ८, ४, ६, ६, १, २, १६ और ३९ प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है।

२०९. **प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की उदीरणा होती है ?**

उत्तर : मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोग केवली गुणस्थान तक क्रम से ११७, १११, १००, १०४, ८७, ८१, ७३, ६९, ६३, ५७, ५६, ५४ और ३९ प्रकृतियों की उदीरणा होती है।

२१०. **प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की अनुदीरणा है ?**

उत्तर : मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली गुणस्थान तक क्रम से ५, ११, २२, १८, ३५, ४१, ४९, ५३, ५९, ६५, ६६, ६८ और ८३ प्रकृतियों की अनुदीरणा है।

उदीरणा त्रिभंगी की योजना उदर त्रिभंगी के अनुसार कर लेना चाहिये।

२११. **प्रश्न : मरण किन किन का नहीं होता है ?**

उत्तर : मिश्र गुणस्थान वाले, निर्वृत्य पर्याप्तक अवस्था के धारण करने वाले मिश्रकाय योगी, क्षपक श्रेणी वाले, उपशम

श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले भाग में स्थित मनुष्य, प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि और सातवें नरक के २-३-४ गुणस्थानवर्ती नारकी, मरण को प्राप्त नहीं होते। इसी तरह अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कर मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले का अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता तथा दर्शन मोहनीय का क्षय करने वाला, जब तक कृत कृत्यता रहती है तब तक मरण नहीं करता।[1]

२१२. प्रश्न : कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि मरकर कहाँ उत्पन्न होता है ?

उत्तर : बद्धायुष्क कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि का काल अन्तर्मुहूर्त है। इसके चार भाग करने चाहिये इन चार भागों में से प्रथम भाग में मरने वाला देवों में द्वितीय भाग में मरने वाला देव और मनुष्यों में, तृतीय भाग में मरने वाला देव-मनुष्य-तिर्यंचों में और चतुर्थ भाग में मरने वाला चारों गतियों में से किसी में भी उत्पन्न होता है।

---

१. इस विषय में दो उपदेश (मत) हैं। एक उपदेश के अनुसार कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरता नहीं है और दूसरे उपदेश के अनुसार मरता भी है। (परम पूज्य जयधवला पु० २ पृ० २१५, २१६ आदि)

ध्यान रहे कि नरक में उत्पन्न होने वाला प्रथम नरक में, तिर्यंच तथा मनुष्यों में उत्पन्न होने वाला भोगभूमिज तिर्यंच तथा मनुष्यों में और देवों में उत्पन्न होने वाला वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होगा।[1]

।। इति तृतीयाधिकार : समाप्तः ।।

---

१. इतना और स्मरणीय है कि प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक देवों में भी नहीं उत्पन्न होता। (धवल १/३३६)

चतुर्थाधिकार:

२१३. प्रश्न : सत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : बन्ध होने पर अपनी अपनी स्थिति के अनुसार कर्म प्रदेशों का आत्म प्रदेशों के साथ संलग्न रहने को सत्त्व कहते हैं।

२१४. प्रश्न : गुणस्थानों में कर्म सत्त्व की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर : प्रथम गुणस्थान में तीर्थंकर और आहारक युगल की सत्ता एक साथ नहीं होती। द्वितीय सासादन गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति और आहारक युगल की सत्ता क्रम से भी नहीं होती और युगपत् भी नहीं होती तथा तृतीय-मिश्रण गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त प्रकृति की सत्ता वाले जीवों के उपर्युक्त गुणस्थान नहीं होंगे।

२१५. प्रश्न : आयुबन्ध हो चुकने पर सम्यक्त्व, देशव्रत और महाव्रत प्राप्त होने की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर : चारों गतियों सम्बन्धी आयु का बन्ध होने पर सम्यग्दर्शन तो हो सकता है, परन्तु देवायु को छोड़कर अन्य आयु का

बन्ध होने पर उस पर्याय में अणुव्रत और महाव्रत नहीं होते। तात्पर्य यह है कि अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा भुज्यमान आयु के साथ चारों आयु की सत्ता हो सकती है। विशेषता यह है कि देव और नरकगति में मनुष्य और तिर्यंच आयु का ही बन्ध होगा तथा मनुष्य और तिर्यंचों के चारों आयु संबंधी बन्ध हो सकता है। नवीन आयु का बन्ध हो जाने पर एक जीव के बध्यमान और भुज्यमान के भेद से दो आयु की सत्ता हो जाती है। नवीन आयु के बन्ध के पहले एक भुज्यमान आयु की ही सत्ता रहती है। क्षपक श्रेणी वाला जीव तद्भव मोक्षमागी होता है, अतः उसके नवीन आयु का बन्ध नहीं होता। मात्र एक भुज्यमान मनुष्यायु की सत्ता रहती है। उपशम श्रेणी वाला यदि बद्धायुष्क है तो उसके भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान देवायु इन दो आयु की सत्ता होगी और अबद्धायुष्क है तो मात्र एक भुज्यमान मनुष्यायु की ही सत्ता होगी। क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर्मभूमिज मनुष्य को चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम् गुणस्थान तक होती है उसके अनन्तानुबंधी चतुष्क और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों का क्षय हो जाता है।

अतः इनकी सत्ता नहीं होती।

१९६. **प्रश्न : किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता होती है ?**

उत्तर : नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में १४८ की सत्ता है। सासादन में तीर्थंकर और आहारकद्वय की सत्ता न होने से १४५ की सत्ता है। मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता न होने से १४७ की सत्ता है। चतुर्थ गुणस्थान में अनन्तानुबंधी सात प्रकृतियों की उपशम रूप सत्ता होने से १४८ की सत्ता है। पंचम् देशव्रत गुणस्थान में नरकायु की सत्ता न होने से १४७ की सत्ता है। प्रमत्तविरत नामक षष्ठम् गुणस्थान में नरक और तिर्यंच आयु की सत्ता न होने से १४६ की सत्ता है। इसी प्रकार अप्रमत्तविरत नामक सप्तम् गुणस्थान में भी १४६ की सत्ता है। चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम् गुणस्थान तक क्षायिक सम्यग्दृष्टि के अनंतानुबंधी आदि सात प्रकृतियों का अभाव होने से १४१ की सत्ता होती है। अष्टम् गुणस्थान में क्षपक श्रेणी वाले के उपर्युक्त सात प्रकृतियों के साथ नरक, तिर्यंच और देवायु का भी अभाव होता है। अतः १३८ की सत्ता है। अनिवृत्तिकरण नामक नवम् गुणस्थान के प्रारंभ में भी १३८ की सत्ता रहती है पश्चात्

क्षपक श्रेणी वाले मनुष्य के नौ भागों में क्रम से १६, ८, १, १, ६, १, १, १ और १ प्रकृति का क्षय होने से ३६ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है अतः दशम् गुणस्थान में १०२ की सत्ता होती है। दशम् के अन्त में सूक्ष्म लोभ का भी क्षय हो जाने से बारहवें गुणस्थान में १०१ की सत्ता रहती है। बारहवें गुणस्थान में १६ की सत्त्व व्युच्छित्ति होने से तेरहवें गुणस्थान में ८५ की सत्ता होती है। तेरहवें गुणस्थान में किसी प्रकृति का क्षय नहीं होता इसलिये चौदहवें गुणस्थान में भी ८५ की ही सत्ता रहती है। पश्चात् उपान्त्य समय में ७३ और अन्त्य समय में १२ प्रकृतियों का क्षय हो जाने से आत्मा सर्व कर्म विप्रमुक्त हो जाती है। उपशम श्रेणी वाला यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और नवीन आयु का बन्ध कर चुका है तो उसके १३८+१=१३९ की सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थान तक रहेगी।[1] यदि अबद्धायुष्क है तो १३८ की सत्ता होगी। यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि है तो अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना होने से १४ की सत्ता रहती है।

---

१. देखो- गो.क. पृष्ठ ३५७ सम्पा. ब्र. पं. रतनचंद मुख्तार।

२१७. प्रश्न : क्षपक श्रेणी वाले के नवम् गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों का क्षय किस प्रकार होता है ?

उत्तर : नवम् गुणस्थान के नौ भाग हैं। उनमें से पहले भाग में नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंगति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जाति, स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय जाति, साधारण, सूक्ष्म और साधारण, इन सोलह प्रकृतियों का क्षय होता है। द्वितीय भाग में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्याना चतुष्क, इन आठ प्रकृतियों का, तृतीय भाग में १ नपुंसकवेद का, चतुर्थ भाग में १ स्त्रीवेद का, पंचम् भाग में ६ नो कषायों का, षष्ठम् भाग में १ पुरुषवेद का, सप्तमं भाग में १ संज्वलन क्रोध का, अष्टम् भाग में संज्वलनमान का और नवम् भाग में संज्वलन माया का क्षय होता है।

२१८. प्रश्न : दशम् गुणस्थान में क्षय होने वाली १ प्रकृति कौन है ?

उत्तर : संज्वलन लोभ, इस १ प्रकृति का क्षय दशम् गुणस्थान के अन्त में होता है। उपशान्त मोह-गुणस्थान, क्षपक श्रेणी वाले के नहीं होता, मात्र उपशम श्रेणी वाले के होता है

तथा उसमें किसी प्रकृति का क्षय भी नहीं होता।

२१९. प्रश्न : बारहवें गुणस्थान में नष्ट होने वाली सोलह प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : बारहवें गुणस्थान के उपान्त्य समय में निद्रा और प्रचला का तथा अन्त समय में ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की चार और अन्तराय की पाँच इस तरह १४ का सब मिलाकर १६ प्रकृतियों का क्षय होता है।

२२०. प्रश्न : अयोग केवली गुणस्थान में क्षय होने वाली ८५ प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : पाँच शरीर से लेकर स्पर्श नामकर्म तक ५० स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देव गत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, वेदनीय की साता-असातावेदनीय में से अनुदय रूप एक और नीच गोत्र ये ७३ प्रकृतियाँ उपान्त्य समय में तथा वेदनीय की एक, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्ति, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर प्रकृति, मनुष्यायु और उच्चगोत्र, ये बारह प्रकृतियाँ अन्त समय में क्षय को प्राप्त होती हैं।

२२१. प्रश्न : उपशम श्रेणी वाले के चारित्र मोहनीय की शेष २१ प्रकृतियों का उपशम किस प्रकार होता है ?

उत्तर : उपशम श्रेणी में होने वाले उपशम का क्रम क्षपणा विधि के समान है, परन्तु कुछ विशेषता है, वह यह कि यहाँ अनिवृत्तिकरण के ९ भागों में से दूसरे भाग में अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, इन आठ कषायों का उपशम नहीं होता किन्तु पुरुषवेद और संज्वलन के पहले होता है तथा उसका क्रम ऐसा है कि पुरुषवेद का उपशम होने के बाद अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दोनों के क्रोध का उपशम होता है पश्चात् संज्वलन क्रोध का उपशम होता है। यही क्रम मानादि में भी जानना चाहिए।

२२२. प्रश्न : उद्वेलन किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस प्रकार बटी हुई जेवड़ी का बल उलटा घुमाने से निकाल दिया जाता है इसी प्रकार बँधी हुई प्रकृति को पीछे परिणामों की विशेषता से अन्य प्रकृति रूप परिणमा कर नष्ट कर देना, अर्थात् उसका फल उदय में नहीं आने देने को उद्वेलना कहते हैं। उद्वेलित प्रकृति का अपने रूप से सत्त्व नहीं रहता।

२२३. प्रश्न : उद्वेलना, किन प्राकृतियों की होती है ?

उत्तर : आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीरांगोपांग मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्च गोत्र, इन तेरह प्रकृतियों की उद्वेलना होती है। उद्वेलना होने पर इनका सत्त्व नहीं रहता।

२२४. प्रश्न : उद्वेलित प्रकृति पुनः सत्ता में आती है या नहीं ?

उत्तर : आती है, जैसे अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव के मोहनीय की २६ प्रकृतियों की सत्ता है वह उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मिथ्यात्व प्रकृति के मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप तीन खण्ड कर २८ प्रकृतियों की सत्ता वाला हुआ पश्चात् मिथ्यादृष्टि होकर पल्योपम के असंख्यातवे भाग में सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति में से एक की अथवा दोनों की उद्वेलना कर २७ और २६ प्रकृति की सत्ता वाला हुआ। पश्चात् पुनः सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मिथ्यात्व प्रकृति के ३ खण्ड करने से सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति की सत्ता को प्राप्त कर लेता है।

२२५. प्रश्न : अभव्य जीव की सत्ता में क्या विशेषता है ?

उत्तर : अभव्य जीव के तीर्थंकर प्रकृति, सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, आहारक बन्धन और आहारक संघात, इन सात प्रकृतियों का कभी सत्त्व नहीं रहता।

।। इति चतुर्थ अधिकार समाप्त ।।

पंचमाधिकारः

२२६. **प्रश्न : उदय व्युच्छित्ति के पश्चात् बन्धव्युच्छित्ति किन प्रकृतियों की होती है ?**

उत्तर : देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक-शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, आहारक युगल अयशस्कीर्ति और देवायु, इन ८ प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति उदय के पश्चात् व्युच्छित्ति होती है।

२२७. **प्रश्न : किन प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति साथ साथ होती है ?**

उत्तर : मिथ्यात्व, आताप, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, संज्वलन लोभ के बिना १५ कषाय, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, एकेन्द्रियादि चार जाति और पुरुष वेद, इन ३१ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति और उदयव्युच्छित्ति साथ ही होती है, अर्थात् जिस गुणस्थान में बन्ध व्यच्छित्ति होती है उसी गुणास्थान में उदय व्युच्छित्ति हो जाती है।

२२८. **प्रश्न : उदय व्युच्छित्ति के पहले बन्ध व्युच्छित्ति किन प्रकृतियों की होती है ?**

उत्तर : उपर्युक्त प्रकृतियों के सिवाय ८१ प्रकृतियों की बन्ध

व्युच्छित्ति उदय व्युच्छित्ति के पहले होती है।

२२९. प्रश्न : परोदयबन्धी प्रकृतियाँ कौन हैं?

उत्तर : देवायु, नरकायु, तीर्थंकर प्रकृति, वैक्रियिकषट्कर, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, देवगति, देव गत्यानुपूर्वी, आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग, ये ११ प्रकृतियाँ परोदय बन्धी हैं अर्थात् इनका पर के उदय में होता है। यानी इनके उदय काल में इन्हीं का बन्ध नहीं होता।

२३०. प्रश्न : स्वोदयबन्धी प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व, पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, तैजस, कामण, वर्णादिक की चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण ये २७ प्रकृतियाँ स्वोदयबन्धी हैं अर्थात् इनका बन्ध अपने उदय के समय में ही होता है।

२३१. प्रश्न : उभयोदयबन्धी प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : उपर्युक्त प्रकृतियों के सिवाय ८२ प्रकृतियाँ उभयोदय बन्धी हैं, अर्थात् अपना उदय होने अथवा न होने पर भी बँधती हैं।

२३२. प्रश्न : निरन्तर बँधने वाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : ध्रुव बन्धी ४७ प्रकृतियाँ (५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ४ वर्णादि) तीर्थंकर, आहारक युगल और ४ आयु ये ५४ प्रकृतियाँ निरन्तर बँधती हैं। जो प्रकृतियाँ जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त काल तक निरन्तर रूप से बँधती हैं वे निरन्तर बन्धी कहलाती हैं।

२३३. प्रश्न : सान्तर बन्धी प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, समचतुरस्र संस्थान को छोड़कर ५ संस्थान, वज्रर्षभ नाराच संहनन को छोड़कर ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर आदि १० असाता वेदनीय, नपुंसक वेद, स्त्री वेद, अरति और शोक ये ३४ प्रकृतियाँ सान्तरबन्धी हैं, अर्थात् कभी किसी प्रकृति और कभी किसी अन्य प्रकृति का बन्ध होता है। एक समय बँधकर द्वितीय समय में जिनका बन्ध विश्रान्त हो जाता है अथवा अनियम से दो आदि समय तक बन्ध होता है वे सान्तर बन्धी प्रकृतियाँ हैं।

२३४. प्रश्न : सान्तर-निरन्तर बँधने वाली प्रकृतियाँ कौन हैं ?

उत्तर : देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, परघातयुगल, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसादि १०[1], सातावेदनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद और गोत्र युगल ये ३२ प्रकृतियाँ विरोधी के रहते हुए सांतर बँधती हैं और विरोधी की व्युच्छित्ति हो जाने पर निरन्तर बँधती हैं। अर्थात् ये उभयबन्धी हैं।

२३५. प्रश्न : भागहार किसे कहते हैं तथा उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर : संसारी जीवों के जिन परिणामों के निमित्त से जो शुभ अशुभ कर्म संक्रमण करें-अन्य रूप परिणमन करें उसे भागहार कहते हैं। इसके ५ भेद हैं- उद्वेलन संक्रमण, विध्यात संक्रमण, अधः प्रवृत्त संक्रमण, गुण संक्रमण और सर्वसंक्रमण।

---

१. त्रसादि दस अर्थात् त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा यश:कीर्ति।

२३६. प्रश्न : संक्रमण किस प्रकार होता है ?

उत्तर : मूल प्रकृतियों का संक्रमण नहीं होता अर्थात् ज्ञानावरणादि के प्रदेश दर्शनावरणादि रूप नहीं होते। दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय रूप नहीं होता। आयुकर्म के चार भेद कभी अल्प आयुरूप नहीं होते। शेष उत्तर प्रकृतियों का संक्रमण होता है। सम्यक्त्व प्रकृति का असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक संक्रमण नहीं होता। इसी प्रकार मिथ्यात्व प्रकृति का मिथ्यात्व गुणास्थान में तथा सम्यङ् मिथ्यात्व का मिश्र गुणस्थान में संक्रमण नहीं होता। दर्शन मोहनीय के तीन भेदों का सासादन और मिश्र गुणस्थान में संक्रमण नहीं होता। सामान्य से दर्शन मोहनीयं का संक्रमण असंयतादि चार गुण-स्थानों में होता है।

२३७. प्रश्न : उद्वेलन संक्रमण का क्या स्वरूप है ?

उत्तर : अधः प्रवृत्त आदि तीन कारण रूप परिणामों के बिना ही कर्म परमाणुओं का अन्य प्रकृति रूप परिणमन होना उद्वेलन संक्रमण कहलाता है। यह आहारक द्विक आदि १३ प्रकृतियों में ही होता है।

२३८. प्रश्न : विध्यात संक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर : मन्द विशुद्धता वाले जीव की, स्थिति-अनुभाग के घटाने रूप भूतकालीन स्थिति कांण्डक और अनुभाग काण्डक तथा गुण श्रेणी आदि परिणामों में प्रवृत्ति होना विध्यात संक्रमण है।

२३९. प्रश्न : अधःप्रवृत्त संक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर : बन्ध रूप हुई प्रकृतियों के परमाणुओं का, अपने बन्ध में संभवती प्रकृतियों में जो प्रदेश संक्रमण होता है उसे अधःप्रवृत्त संक्रमण कहते हैं।

२४०. प्रश्न : गुण संक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जहाँ पर प्रति समय असंख्यात गुण-श्रेणी के क्रम से कर्मप्रदेश अन्य प्रकृति रूप परिणमते हैं उसे गुण संक्रमण कहते हैं।

२४१. प्रश्न : सर्वसंक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर : अन्तिम काण्डक की अन्तिम फालि के सर्व प्रदेशों का जो अन्य प्रकृति रूप नहीं हुए हैं ऐसे उन परमाणुओं का अन्य प्रकृति रूप होने को सर्वसंक्रमण कहते हैं।

२४२. प्रश्न : कर्मों के दस करण (अवस्था) कौन-कौन हैं ?

उत्तर : १. बन्ध, २ उत्कर्षण, ३. संक्रमण, ४. अपकर्षण, ५. उदीरणा, ६. सत्त्व, ७. उदय, ८. उपशम, ९. निधत्ति और १०. निकाचना ये दस करण प्रत्येक कर्म प्रकृति के होते हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है

१. कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना बन्ध है।

२. कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग का बढ़ना उत्कर्षण है।

३. बन्धरूप प्रकृति का अन्य रूप परिणमन होना संक्रमण है।

४. कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग का घट जाना अपकर्षण है।

५. उदयावली के बाहर स्थित कर्मद्रव्य को अपकर्षण के बल से उदयावली काल में लाना उदीरणा है।

६. बँधे हुए कर्म पुद्गल का कर्मरूप रहना सत्त्व है।

७. कर्म प्रदेशों का फल देने लगना उदय है।

८. निश्चित समय तक कर्म का उदयावली में प्राप्त नहीं होना उपशम है।

९. कर्मों का उदय उदीरणा और संक्रमण-इन अवस्थओं को प्राप्त नहीं होना निधत्ति है।

८. जिस कर्म की उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण और संक्रमण चारों ही अवस्थाएँ न हो सकें उसे निकाचित करण कहते हैं।

२४३. प्रश्न : सम्यक्त्वादिक की विराधना कितनी बार हो सकती हैं ?

उत्तर : प्रथमोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व देशव्रत और अनन्तानुबंधी की विसंयोजना विधि, इन चारों को यह जीव अधिक से अधिक पल्य के असंख्यातवें भाग के जितने समय हैं उतनी बार छोड़ छोड़कर पुनः पुनः ग्रहण कर सकता है। पश्चात् सिद्धपद को नियम से प्राप्त करता है।

२४४. प्रश्न : यह जीव अधिक से अधिक उपशम श्रेणी कितनी बार चढ़ सकता है ?

उत्तर : उपशम श्रेणी पर जीव एक पर्याय में अधिक से अधिक दो बार और सब पर्यायों की अपेक्षा चार बार चढ़ सकता है। पश्चात् कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करता है। क्षपक श्रेणी एक बार ही प्राप्त होती है। उसी एक श्रेणी से कर्म क्षय कर मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

२४५. प्रश्न : भावलिंगी मुनिपद कितनी बार धारण करना पड़ता है ?

उत्तर : भावलिंगी मुनि पद अधिक से अधिक ३२ बार ही धारण करना पड़ता है। ३२वीं बार के मुनिपद से अवश्य ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। द्रव्यलिंगी मुनिपद अनन्त बार नष्ट हो सकता है, कोई कोई निकट भव्य एक बार ही भावलिंगी मुनिपद धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

२४६. प्रश्न : कर्म के बन्ध के सामान्य प्रत्यय (कारण) कौन हैं ?

उत्तर : सामान्य रूप से मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार बन्ध के प्रत्यय हैं। कहीं कहीं प्रमाद को भी बन्ध का प्रत्यय कहा गया है परन्तु यहाँ उसे कषाय में गर्भित कर लिया है, प्रथम गुणस्थान में बन्ध के चारों प्रत्यय रहते हैं। सासादन से अविरत सम्यग्दृष्टि तक तीन गुणस्थानों में अविरति, कषाय और योग इन तीन प्रत्ययों से बन्ध होता है। एक देश अविरति का त्याग होने से देश संयत गुणस्थान में अविरति नाम का दूसरा प्रत्यय विरति से मिला हुआ है शेष कषाय और योग पूर्णरूप से विद्यमान हैं। प्रमत्त संयत से लेकर सूक्ष्म सांपराय तक पाँच

गुणस्थानों में कषाय और योग-दो प्रत्यय हैं। उपशान्त मोह से लेकर सयोगकेवली तक तीन गुणस्थानों में एक योग ही प्रत्यय रहता है। अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान में बन्ध का एक भी प्रत्यय नहीं है अतः वहाँ पूर्ण रूप से अबन्ध रहता है, अर्थात् एक भी प्रकृति का बन्ध नहीं होता।

२४७. प्रश्न : उपर्युक्त चार प्रत्ययों के उत्तर भेद कितने हैं ?

उत्तर : मिथ्यात्व के ५, अविरति के १२, कषय के २५ और योग के १५, इस तरह सब मिलाकर प्रत्यय के ५७ उत्तर भेद हैं। एकान्त, विपरीत, संशय, अज्ञान और वैनयिक के भेद से मिथ्यात्व के ५ भेद हैं। षट्कायिक जीवों की हिंसा से विरति न होने के कारण प्राणि- अविरति के ६ और छह इन्द्रियों के विषयों से विरति न होने के कारण इन्द्रिय अविरति के ६, इस तरह अविरति के १२ भेद हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया, लोभ आदि १६ कषाय और हास्यादि ९ नो कषाय मिलकर कषाय के २५ भेद हैं। काय योग के ७, वचनयोग के ४ और मनोयोग के ४, इस तरह योग के १५ भेद हैं। इन ५७ प्रत्ययों की गुणस्थानों में योजना कर लेनी चाहिये।

२४८. प्रश्न : ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के बन्ध के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : ज्ञान और दर्शन के विषय में किये गये प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात, ज्ञानावरण और दर्शनावरण के प्रत्यय हैं।

२४९. प्रश्न : सातावेदनीय के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : भूतानुकम्पा (प्राणिमात्र पर दया करना) व्रत्यनुकम्पा (व्रतीजनों पर दया भाव रखना), दान, सराग संयम, क्षमा और शौच (संतोष) सातावेदनीय के प्रत्यय हैं।

२५०. प्रश्न : असातावेदनीय के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन (विलाप) आदि असातावेदनीय के प्रत्यय हैं।

२५६. प्रश्न : दर्शन मोहनीय के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद करना (मिथ्या दोष लगाना) दर्शनमोह के प्रत्यय हैं।

२५८. प्रश्न : चारित्र मोहनीय के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : कषाय के उदय से तीव्र परिणाम रखना चारित्र मोहनीय के प्रत्यय हैं।

२५९. प्रश्न : नरकायु बन्ध के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : बहुत आरम्भ और परिग्रह में आसक्ति रखना नरकायु के प्रत्यय हैं।

२६०. प्रश्न : तिर्यंच आयु का प्रत्यय क्या है ?

उत्तर : मायाचार रूप परिणति तिर्यंच आयु का प्रत्यय है।

२६१. प्रश्न : मनुष्यायु का प्रत्यय क्या है ?

उत्तर : अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह का होना मनुष्यायु का प्रत्यय है। स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का प्रत्यय है।

२६२. प्रश्न : देवायु के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : सराग संयम, संयमा संयम, अकाम निर्जरा और बाल तप तथा सम्यक्त्व के काल में होने वाला प्रशस्त राग देवायु के प्रत्यय हैं।

२६३. प्रश्न : नामकर्म के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : मन, वचन, काय की कुटिलता तथा सहधर्मीजनों के साथ विसंवाद करना अशुभ नामकर्म के प्रत्यय हैं और इनसे विपरीत भाव शुभ नामकर्म के प्रत्यय हैं।

२६४. प्रश्न : तीर्थंकर प्रकृति के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : दर्शन विशुद्धि, विनय संपन्नता, शील और व्रतों में अतिचार नहीं लगाना, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति, बहु श्रुतभक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि (आवश्यक क्रियाओं में कमी नहीं करना) मार्ग प्रभावना और प्रवचन वत्सलत्व, ये सोलह भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति के प्रत्यय हैं।

२६५. प्रश्न : गोत्र कर्म के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : दूसरों की निन्दा, अपनी प्रशंसा, दूसरों के विद्यमान गुणों का लोप करना और अपने अविद्यमान गुणों का प्रकट करना नीच गोत्र कर्म के प्रत्यय हैं तथा इनसे विपरीत परिणति उच्च गोत्र के प्रत्यय हैं।

२६६. प्रश्न : अन्तराय कर्म के प्रत्यय क्या हैं ?

उत्तर : किसी के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न करना अन्तराय कर्म के प्रत्यय हैं।

२६७. प्रश्न : गुणहानि किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें गुणाकार रूप हीन् हीन द्रव्य पाये जाते हैं उन्हें गुणहानि कहते हैं। आबाधा काल पूर्ण होने पर समय

प्रबद्ध का द्रव्य आगामी समयों में गुणित रूप से हीन हीन होता हुआ खिरता है। यह हानिरूप क्रम ही गुण हानि है। जैसे किसी जीव ने एक समय में ६३०० परमाणुओं के समूह रूप समय प्रबद्ध¹ का बन्ध किया और उसमें ४८ समय की स्थिति पड़ी। उसमें गुण हानियों की समूह रूप नाना गुण हानि ६ हुई। उनमें से प्रथम गुण हानि में ३२००, द्वितीय गुण हानि में १६००, तृतीय गुण हानि में ८००, चतुर्थ गुणहानि में ४००, पंचम गुणहानि में २०० और षष्ठम् गुणहानि में १०० कर्म परमाणु खिरते हैं।

२६८. प्रश्न : गुण हानि आयाम किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक गुण हानि के समयों के विस्तार को गुण हानि आयाम कहते हैं जैसे ऊपर के दृष्टान्त में समय प्रबद्ध की स्थिति ४८ समय थी और उसमें ६ गुण हानियाँ थीं, अतः ४८ में ६ का भाग देने से एक गुण हानि का आयाम (विस्तार) ८ समय हुआ। यही गुण हानि आयाम कहलाता है।

---

1. समय प्रबद्ध का वास्तविक प्रमाण सिद्धों के अनन्तवें भाग और अभव्यराशि से अनन्त गुणित होता है। यहां दृष्टान्त के लिये ६३०० का कल्पित किया गया है।

२६९. प्रश्न : नाना गुणहानि किसे कहते है ?

उत्तर : गुण हानियों के समूह को नाना गुणहानि कहते हैं। जैसे ऊपर के दृष्टान्त में आठ-आठ समय की ६ गुण हानियाँ हैं। यही ६ संख्या नाना गुण हानि का परिमाण है।

२७०. प्रश्न : अन्योन्याभ्यस्त राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर : नाना गुण हानियों का जितना प्रमाण है उतनी जगह दो-दो लिखकर अन्योन्य-परस्पर गुणा करने से जो राशि लब्ध हो उसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे ऊपर के दृष्टान्त में नाना गुण हानियों का प्रमाण ६ है अतः ६ जगह दो दो लिख परस्पर गुणा करने से ६४ होते हैं। २ x २ x २ x २ x २ x २=६४ यही अन्योन्याभ्यस्त राशि है।

२७१. प्रश्न : अन्तिम गुण हानि का द्रव्य निकालने की विधि क्या है ?

उत्तर : एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशि का समय प्रबद्ध के प्रमाण में भाग देने से अन्तिम गुण हानि का द्रव्य निकलता है। जैसे ऊपर के दृष्टान्त में अन्योन्याभ्यस्त का प्रमाण ६४ है उसमें १ कम करने पर ६३ रहे। इनका समय प्रबद्ध के प्रमाण ६३०० में भाग देने से अन्तिम गुण हानि का

द्रव्य १०० आया।

२७२. प्रश्न : अन्य गुण हानियों का द्रव्य किस प्रकार निकलता है ?

उत्तर : अन्तिम गुण हानि के द्रव्य को प्रथम गुण हानि तक दूना दूना करने से अन्य गुण हानियों का द्रव्य निकलता है। जैसे २००, ४००, ८००, १६००, ३२००।

२७३. प्रश्न : प्रत्येक गुण हानि के प्रथमादि समयों का द्रव्य किस प्रकार निकलता है ?

उत्तर : गुण हानि आयाम से दूने परिमाण रूप निषेकहार में चय का गुणा करने से प्रत्येक गुण हानि के प्रथम समय के द्रव्य का परिमाण निकलता है और उसमें से एक-एक चय घटाने से आगे आगे के समयों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे ऊपर के दृष्टान्त में नाना गुण हानि आयाम का परिमाण ८ था उससे दूने १६ निषेकहार का परिमाण हुआ। अतः निषेकहार १६ में चय ३२ का गुणा करने पर प्रथम गुण हानि के प्रथम समय का द्रव्य ५१२ होता है। इसमें से एक एक चय बत्तीस बत्तीस घटाने से द्वितीयादि समयों के द्रव्य का परिमाण क्रम से ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८ निकलता

है। इसी प्रकार द्वितीयादि गुण हानियों के प्रत्येक समय का द्रव्य निकाल लेना चाहिये।

२७४. प्रश्न : चय किसे कहते हैं ?

उत्तर : श्रेणी व्यवहार गणित में समान हानि या समान वृद्धि के परिमाण को चय कहते हैं।

२७५. प्रश्न : इस प्रकरण में चय का परिमाण निकालने की क्या रीति है ?

उत्तर : निषेकहार में एक अधिक गुण हानि आयाम का परिमाण जोड़कर आधा करने से जो लब्ध आवे उसमें गुण हानि आयाम से गुणा करें, इस प्रकार गुणा करने से जो गुणनफल हो उसका भाग विवक्षित गुण हानि के द्रव्य में देने से विवक्षित गुण हानि के चय का परिमाण निकलता है। जैसे निषेकहार १६ में एक अधिक गुणहानि आयाम ९ को जोड़ने से २५ हुए। उसके आधे साढ़े १२ को गुण हानि आयाम ८ से गुणा करने पर १०० होते हैं इसका अपनी अपनी विवक्षित गुण हानि के द्रव्य में भाग देने से प्रथमादि गुणहानियों का क्रम से ३२, १६, ८, ४, २, १ चय निकलता है।

६ गुण हानियों में ६३०० समय प्रबद्ध का विभाग इस प्रकार है:-

चय ३२	चय १६	चय ८	चय ४	चय २	चय १
३००	१६००	८००	४००	२००	१००
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
२८८	१४४	७२	३६	१८	९

२७५. प्रश्न : निषेक किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक समय में उदय में आने वाले कर्म परमाणुओं के समूह को निषेक कहते हैं।

२७७. प्रश्न : स्पर्द्धक किसे कहते हैं ?

उत्तर : वर्गणाओं के समूह को स्पर्द्धक कहते हैं।

२७८. प्रश्न : वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर : वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

२७६. प्रश्न : वर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर : समान अविभाग प्रतिच्छेदों वाले प्रत्येक कर्म परमाणु को वर्ग कहते हैं।

२८०. प्रश्न : अविभाग प्रतिच्छेद किसे कहते हैं ?

उत्तर : शक्ति के अविभागी अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं।

२८१. प्रश्न : इस प्रकरण में शक्ति से क्या विवक्षित है ?

उत्तर : फल देने की अनुभाग रूप शक्ति विवक्षित है।

२८२. प्रश्न : मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर : दो घड़ी अथवा ४८ मिनट को एक मुहूर्त कहते हैं।

२८३. प्रश्न : अन्तर्मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर : आवली से ऊपर और मुहूर्त से भीतर के काल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। इसके असंख्यात भेद होते हैं।

२८४. प्रश्न : आवली किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक श्वास के संख्यातवें भाग को आवली कहते हैं अर्थात् एक श्वास में संख्यात आवलियां होती हैं।

२८५. प्रश्न : एक श्वास किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी के एक बार चलने को श्वास कहते हैं।

२८६. प्रश्न : एक मुहूर्त में कितने श्वास होते हैं ?

उत्तर : एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वास होते हैं।

२८७. प्रश्न : यह जीव एक श्वास में कितनी बार जन्म मरण करता है ?

उत्तर : एक श्वास में अठारह बार जन्म मरण कर सकता है।

२८८. प्रश्न : एक मुहूर्त में कितनी बार जन्म मरण कर सकता है ?

उत्तर : एक मुहूर्त में छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म मरण कर सकता है।

२८९. प्रश्न : संसारी जीव की जघन्य आयु कितनी है ?

उत्तर : संसारी जीव की जघन्य आयु श्वास के अठारहवें भाग है।

२९०. प्रश्न : संसारी जीव की उत्कृष्ट आयु कितनी है ?

उत्तर : संसारी जीव की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है।

२९१. प्रश्न : सागर किसे कहते हैं ?

उत्तर : दस कोड़ा कोड़ी अद्धा पल्यों का एक सागर होता है।

२९२. प्रश्न : कोड़ाकोड़ी किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक करोड़ में एक करोड़ का गुणा करने पर जो गुणनफल प्राप्त हो उसे कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

२९३. प्रश्न : अद्धापल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : दो हजार कोश चौड़े और दो हजार कोश गहरे गोल गड्ढे में मेंढे के ऐसे बाल को जिनका कैंची से दूसरा भाग न हो सके, धांस-धांस कर भरे और फिर सौ सौ वर्ष बाद एक एक बाल निकाले। ऐसा करने पर जितने वर्षों में सब बाल निकल जावें उतने वर्षों के जितने समय हों उतने समयों को व्यवहार पल्य कहते हैं। व्यवहार पल्य से असंख्यात गुणा उद्धार पल्य होता है और उद्धार पल्य से असंख्यात गुणा अद्धा पल्य होता है। दस कोड़ा कोड़ी सागर का एक उत्सर्पिणी और इतने ही वर्षों का एक अवसर्पिणी काल होता है। दोनों ही मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्प काल होता है।

२९४. प्रश्न : उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें जीवों की आयु बल, बुद्धि तथा शरीर की अवगाहना आदि में क्रम से वृद्धि होती रहे उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

२९५. प्रश्न : उत्सर्पिणी काल के कितने भेद हैं ?

उत्तर : छह हैं- १. अति दु:षमा (इक्कीस हजार वर्ष), २. दु:षमा (इक्कीस हजार वर्ष), ३. दु:षम सुषमा (बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर), ४. सुषम दु:षमा (२ कोड़ाकोड़ी सागर) ५. सुषमा (३ कोड़ाकोड़ी सागर)

६. सुषम सुषमा (४ कोड़ाकोड़ी सागर)।

२६६. प्रश्न : अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिसमें जीवों की आयु, बल, बुद्धि तथा शरीर की अवगाहना आदि में क्रम से हानि होती रहे उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं।

२६७. प्रश्न : अवसर्पिणी काल के कितने भेद हैं ?

उत्तर : छह हैं–१. सुषम सुषमा, २. सुषमा, ३. सुषमा दुःषमा, ४. दुःषम सुषमा, ५. दुःषम सुषमा, ६. अति दुःषमा। इनके काल का प्रमाण उत्सर्पिणी के छह कालों के समान है।

२६८. प्रश्न : पूर्व किसे कहते हैं ?

उत्तर : चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है।

२६९. प्रश्न : पूर्वांग किसे कहते हैं ?

उत्तर : चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है।

३००. प्रश्न : पूर्वकोटि किसे कहते हैं ?

उत्तर : एक पूर्व में एक करोड़ का गुणा करने से लब्ध आवे उसे एक पूर्व कोटि कहते हैं।

।। इति पंचमाधिकारः समाप्तः ।।

चित्र बन्ध त्रिभंगी, बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२०

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्ध व्युच्छित्ति
मिथ्यात्व	११७	३	१६
सासादन	१०१	१९	२५
मिश्र	७४	४६	०
अविरत स.	७७	४३	१०
देशविरत	६७	५३	४
प्रमत्त विरत	६३	५७	६
अप्रमत्त विरत	५९	६१	१
अपूर्वकरण	५८	६२	३६
अनिवृत्तिकरण	२२	९८	५
सूक्ष्म सांपराय	१७	१०३	१६
उपशान्त मोह	१	११९	०
क्षीणमोह	१	११९	०
सयोग केवली	१	११९	१
अयोग. केवली	०	१२०	०

चित्र उदय त्रिभंगी, उदय योग्य प्रकृतियाँ १२२

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय व्युच्छित्ति
मिथ्यात्व	११७	५	५
सासादन	१११	११	६
मिश्र	१००	२२	१
अविरत स.	१०४	१८	१७
देशविरत	८७	३५	८
प्रमत्त विरत	८१	४१	५
अप्रमत्त विरत	७६	४६	४
अपूर्वकरण	७२	५०	६
अनिवृत्तिकरण	६६	५६	६
सूक्ष्म सांपराय	६०	६२	१
उपशान्त मोह	५६	६३	२
क्षीणमोह	५७	६५	१६
सयोग केवली	४२	८०	३०
अयोग केवली	१२	११०	१२

मिश्र' सत्त्व त्रिभंगी सत्त्व योग्य १४८

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति
१	१४८	०	०
२	१४५	३	०
३	१४७	१	०
४	१४८	०	१
५	१४७	१	१
६	१४६	२	०
७	१४६	२	८
८	१३८	१०	०
९ I भाग	१३८	१०	१६
९ II भाग	१२२	२६	८
९ III भाग	११४	३४	१
९ IV भाग	११३	३५	१
९ V भाग	११२	३६	६

टिप्पणी १ पृष्ठ-१२० पर देखिये।

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति
६ VI भाग	१०६	४२	१
६ VII भाग	१०५	४३	१
६ VIII भाग	१०४	४४	१
६ IX भाग	१०३	४५	१
१०	१०२	४६	१
१२	१०१	४७	१६
१३	८५	६३	०
१४	८५	६३	७२
द्विचरम समय			
मतान्तर	८५	६३	७३ (धवल ६/४१७)
१४ चरम समय	१३	१३५	१३ (धवल ६/४१७)
मतान्तर	१२	१३६	१२ (धवल ६/४१७)

पृष्ठ ११६ की टिप्पणी-

१. **नोट**- यह सर्व सत्त्व त्रिभंगी विषयक कथन क्षपक श्रेणी की अपेक्षा किया है। उपशम श्रेणी की अपेक्षा छटें गुणस्थान तक वही बात है तथा सातवें से लेकर उपशान्त कषाय गुणस्थान तक के प्रत्येक गुणस्थान में असत्त्व प्रकृति '२' सत्त्व प्रकृति "१४६" तथा सत्त्व व्युच्छित्ति प्रकृति '०' कहना चाहिए। यह कथन भी उस मत की अपेक्षा है जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना का नियम स्वीकार नहीं करता है।